

BHAVAN'S LIBRARY

This book is valuable and
NOT to be ISSUED
out of the Library
without Special Permission

‘मास्टर’ यजिमालाया २४९ संख्यको मणि (न्यायमिमांगे ११)

नैषायिकश्रीविश्वनाथपञ्चाननरचितकारिकावलीसहित- न्यायसिद्धान्तमुक्तावल्याः अनुमानखण्डम्

[विविधराजकीयसस्कृतपरीक्षासु आचार्यकक्षाया निर्द्दिरितम्]

शाश्वीस्थराजकीयसस्कृतमहाविद्यालये कृत्यायतांज्ञात्यापनेन न्यायव्याखरणादनेक-
शास्त्रीश्चार्थनिर्माणा स्वर्गीय पण्डितराज शास्त्राधिगत्यसिद्ध सस्कृताशुक्ति
चक्रवर्ति श्रीदेवीग्राधवराक्षिणामाःपनेन काशीरथ राजसम्बद्ध
सस्कृतादर्श शास्त्रार्थमहाविद्यालयप्रधान। वार्येण सुप्रिद्द सर्व
परीणकुलेन शास्त्रार्थव्याख्यानवाचस्पतिना श्रीराज
मारायणशास्त्रिशुक्तमहेदयेन स्वरचितप्रभास्त्र
सस्कृतमार्थेण सरस्तत्यास्त्वयिन्द्रीक्या
॒ ॑ ॒ परिष्कृत्य समाप्तितम् ।

—०—

तदिदम्—

काशीस्थ—‘सस्कृत-शुक्तिपो’स्वामिभिः
‘मास्टर खेलाढीलाल ऐण्ड सन्स महोदयैः
स्वीये ‘मास्टर प्रिण्टझ वर्क्स’ इत्यास्त्रमुद्रणालये
मुद्राप्रयित्वा प्रकाशितम् ।

—०—

प्रकाशक —

नौ० एन० यादव,
अध्यक्ष, मास्टर प्रेलाडीलाल ऐण्ड एन्स,
सहृत तुडिपो,
कच्चीडीगलो, बनारस-१

अस्य पुनर्मुद्रणाधिकार प्रकाशने न सुरक्षित ।

मुद्रक —

मास्टर प्रिण्टिंग वर्क्स
बुडानाथा, बनारस-१

प्रवृत्तिनिमित्तम्

न्यायशास्त्रप्रिय भद्रानुभाव ।

कारिकावलीसहित न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रथा भवार्थार्थचित् कारिकावलीसहित न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रथा में न्याय तथा वैशेषिक दोनों दर्शनों के माध्यम से पदाधनिलेपण की जो अपूर्वपद्धति प्राप्य है, वह अन्यत्र नहीं । आत्मिक रघविता ने शिष्टाचारपरम्पराप्राप्त अनुबन्धचतुष्टय एवम् महालवाद का उत्तमशास्त्रार्थ प्रथा के आरम्भ में ही विशद किया है । शुगशिष्यसम्बन्ध का विव्य आदर्श तथा शिष्य पर गुहादेव की अनुपम कृपा का प्रवाह 'राजीवदयावशवद्' इस पर्फि से सुट है ।

नास्तिकदर्शनों के कुत्तों ने यथाकृत ईश्वर के रण्डन में प्रयत्न किया या परन्तु इस प्रथकार ने महालाचरण से ही ईश्वरसिद्धि के अकाशतर्क स्पतित किये हैं ।

इन्होंने सर्वप्रथम कारिकावली की रचना की, जिसमें १६८ कारिकायें हैं । बिना किसी प्रकार की टीका अथवा भाष्य के जय उस प्रथा का सरलतया बोध सम्भव न हुआ तो अपने शुश्रूपुशिष्य राजीवलोचन की प्रार्थना पर इन्होंने रवयम् अपने प्रथा की टीका के रूप में न्यायसिद्धान्तमुक्तावली की रचना की । यात्यय में इस न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के अध्ययन से तर्कशास्त्र का पूर्णतया अवगम हो जाता है । इसके मुख्य ४ खण्ड हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपग्रान तथा शब्द । अपनी विशेषता के लिये प्रत्येक प्रसिद्ध है । इन्हीं अनन्यसाधारणगुणों के कारण मध्यमा से लेकर आचार्य तक की परीक्षाओं में इसे स्थान प्राप्त है । जिन्होंने प्रत्यक्ष खण्ड से इसका व्याख्याय नहीं किया है ऐसे साहित्य तथा व्याकरणाचार्य परीक्षा के छात्रों को अनुमानखण्ड तथा शब्दखण्ड का अध्ययन अवश्य ही कठिन होगा । गर यही वयों से मेरा विचार इस पर सरल टीका लियने का था परन्तु कार्यव्यतावश न कर सका । आज के विद्यार्थी किसी भी परीक्ष्यप्रथा की सरलसकृतवटोंका साथ ही हिन्दी अनुवाद की प्रतीक्षा करते हैं ।

कारिकावली के
शायमान लिङ्गं तु करणं न हि ।
अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमित्स्तदा ॥६७॥

न्यायसिद्धान्तसुकावली के

अत्र प्राचीनासु व्याप्तवेन शायमानं लिङ्गमनुमितिकरणमिति
चदन्ति, वद् दूषयति शायमानमिति । लिङ्गस्याऽनुमित्यकरणत्वे युक्ति-
माह अनागतादीति । यद्यनुमिती लिङ्गं करणं स्यात्, तदाऽगतवेन
लिङ्गेन विनष्टेन चाऽनुमितिर्वात् स्यात्, अनुमितिकरणस्य तदानीम-
भावादिति ॥ ६६-६७ ॥

* प्रभा *

एवं च पूर्वं साधेद्वासद्वारदशानेन व्याहितशानम्, ततः कदाचित् परंगदी
देवमान् पश्च इति पश्चमंता, तदः व्याहितमरणम्, ततः परामर्थः व्याहितिशिष्ठ-
पश्चमंताशानरूपः, तदोऽनुमितिजयिते ‘पर्वतो वह्निमात् धूमात् महानसवद्’
इत्यादि । इति पक्षिया ।

अनुमायो व्याहितीः करण व्यापारः तु परामर्थः यवेद्, हि शायमानं लिङ्गं
तु करण न, तदा अनागतादिलिङ्गेन अनुमितिः न स्यात् इति कारिकामवः ।

लिङ्गम् = देतुः, शायमानम् = शायते हति शान्त्, वर्त्मानकालिङ्गान-
विषयीभूतम् । तदा = केवलस्य वर्त्मानस्य देतोरेनुमितिकरणत्वे । अनागतादीति ।
अनागत = मविष्ठत्, व्यादिना अतीतलिङ्गसंयहः । अनुमानपकारज्ञेयम्—इदं
शहम् अतीतवह्निमत् अतीतधूमात्, इदं शहम् भविष्ठदह्निमत् भविष्ठधूमात्
महानसवत् । नवोनपते द्वास केवलस्य लिङ्गस्य करणता, अपित्रु लिङ्गानस्य ।
तथा च लिङ्गानस्य कालप्रयेषिणि शुल्कस्यानुपपचिरिति ॥६६-६७॥

* सरस्वती *

अनुमायो अनुमिति) मे परामर्थं व्यापार तथा व्याहितान करण होता है,
वर्त्मान भाल मे शात होनेवाला लिङ्ग (देतु) करण नहीं होता, अन्यथा अतीत
तथा मविष्ठत् लिङ्ग से अनुमिति नहीं बन सकती ।

अनुमिति कैसे होती है ! इसे उदाहरण से बताता रहे हैं—ऐसे जिस पुरुष

ॐ कारिकाबली ॥

व्याप्यस्य पक्षशृच्चित्वधीः परामर्शं उच्चते ।

ॐ न्यायसिद्धान्वमुक्ताबली ॥

व्याप्यस्येति । व्याप्तिविशिष्टत्य पक्षेण सद् वैशिष्टयावगादिज्ञानमनु-
मिती जनकं, तथ 'पक्षे व्याप्य' इति ज्ञानं 'पक्षो व्याप्यवान्' इति ज्ञानं
या, अनुमितिःतु 'पक्षे व्याप्य' इति ज्ञानात् 'पक्षे साध्यम्' इत्याकारिका,
'पक्षो व्याप्यवान्' इति ज्ञानात् 'पक्षः साध्यवान्' इत्याकारिका ।

* प्रमा *

परामर्शं उच्चते व्याप्यस्येति । पक्षेण सद्वेति । अत एव ज्ञानदूयं फलति ।
कारणत्वस्तुपद्ये कार्यस्त्वरूपद्य त्वद्यज्ञाह अनुमितिस्त्वति । परत्परज्ञाये
व्यभिचारावारणत्वं अपवहितोत्तरत्वमिवेदमुदया ।

* सरत्वती *

मे कमी महानस (रतोई घर) में बढ़ि तथा धूम को देखकर अधिक देश में रहने
के कारण बढ़ि व्यापक तथा अल्पदेश में रहने के कारण धूम व्याप्त होता है
इस प्रकार व्याप्ति ज्ञान किया व्यक्तात् वही दुश्य जब धूमने के बहने पदार्थ
की ओर तथा तथ उसने पर्वत में निरमर निकलते हुये धूम को देख पूर्व में हुई
व्याप्ति का स्परण करता है, उसके बाद उसे 'बढ़ि-वाणीधूमवाला यह पर्वत' ऐसा
परामर्शदान होता है, वदनन्तर 'पर्वत विद्विवाला है, धूम से, महानष की तरह'
इस प्रकार की अनुग्रहि होती है ॥ ६६-६७ ॥

व्याप्ति से विशिष्ट हेतु का पक्ष में वृत्तिवशान् ही परामर्श कहा जाता है ।
वह दो प्रकार का १ पक्ष में व्याप्य २ पक्ष व्याप्तवाला । अनुमिति तो प्रथम
ज्ञान से पक्ष (पर्वत) में साध्य (बढ़ि) ऐसी, तर्थीं द्वितीयगति से पक्ष
(पर्वत) साध्य (बढ़ि) वाला ऐसी होती है ।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षे

द्विविधादपि परामशीत् पक्षः साध्यवानित्येवाऽनुमितिरित्यन्ये ।

ननु 'वहित्याप्यधूमवान् पर्वत' इति ज्ञानं विनाइपि यत्र पर्वतो धूम-
चानिति प्रत्यक्षं, ततो 'वहित्याप्यो धूम' इति व्याप्तिस्मरणं, तत्र ज्ञानद्वया-
देवाऽनुमित्येदृशंनात् व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं न सर्वत्र कारणं,
किन्तु व्याप्त्यवच्छेदकप्रकारक्षम्याद्यज्ञानत्वेन कारणत्वस्याऽवद्य-

• प्रभा • ,

अनुभवमतुरुद्धान आह द्विविधादपीति । नवैवमेकत्र कारणदृष्ट-
स्त्वीकारे व्यतिरेकव्यभिचारे हुर्वार इति वाच्यम्, पक्षनिविपयतानिविव्याप्ति-
निष्ठविपयताग्नालिङ्गान्वेन ज्ञानद्वयानुगमादेकप्रेण व्यभिचाराप्रसङ्गे ।

नन्विति । इदम् परामशीलण्डकानाम् मीमांसकानाम् मतम् । तन्मते पर्व-
तमंताव्याप्तिस्मरणम्यामेवानुमित्येः विद्वान् न परामशीवरद्वयाः । वैविष्यम्-
=सम्बन्धः । सर्वत्रेति । यत्र क्वचन स्थलविशेषे तस्य कारणवेऽपि सर्वत्र वर्त-
स्त्वीकारोऽनुवित्त इति एनितम् ।

स्वामितं स्पष्टयति किन्तिवर्ति । व्याप्यो धूम्, व्याप्तता धूमविडा,
व्याप्ततावच्छेदक धूमत्वम्, तत्प्रकारत्वम्, पद्ममंताज्ञानम् 'धूमवान् पर्वत'—
इति सम्बन्धः ।

• सरस्वती •

किसी का मत है कि दोनों प्रकार के ज्ञान से पक्ष (पर्वत) साध्य (वहि)
वाला ऐसी एक ही अनुमिति होती है ।

प्रथम—वहित्याप्यधूमवान् पर्वत इस लम्बे चौडे ज्ञान के विना मी जहाँ पर
पर्वत धूमयुक्त है ऐसा पर्वत, तदनन्दर वहित्याप्य धूम ऐसा व्याप्तिस्मरण
हुआ, जहाँ पर दोही ज्ञान से अनुमिति उल्लंघन हो जाती है । ऐसी विधि में पर्य-
मय को अतिरिक्त कारण मानने की क्या आवश्यकता । किन्तु व्याप्ततावच्छेदक

क्षु न्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षु
केत्यात् तत्र विशिष्टज्ञानकल्पने गौरवाशेति चेत्र—

व्याप्यतावच्छेदकाज्ञानेऽपि बहुव्याप्यथानिति ज्ञानादमुमिल्युत्तरेः
आथवाच व्याप्तिश्कारकपञ्चर्थमंताज्ञानत्वेन हेतुत्वम् ।

किं च 'पूमवान् पर्वत' इति ज्ञानादमुमिल्यापर्ति, व्याप्यतावच्छेद-
कीमूलधूमत्वप्रकारकस्य पञ्चर्थमंताज्ञानस्य सह्यात् ।

न च गृह्णमाणव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपञ्चर्थमंताज्ञानस्य हेतुल्यान्न दोष

* प्रभा *

अध्यात्मा खण्डयति व्याप्तेति । सिद्धान्ते बहुव्याप्यवानितिज्ञानादपि
पञ्चर्थमंताज्ञान भवती अनुमितिरिदानीं व्याप्यतावच्छेदकपञ्चरथमंताज्ञानत्वेरेष
न स्यादिति भावः । गौरवगपि तदेति तदपेक्षया द्युमूलमाहम्य, व्याप्तिश्कार-
केति । आपत्तिमपि तत्र दृश्य तदमत द्रढयति किंचेति । आरति विशिष्टिकीर्तुराह
न चेति । पञ्चचिदुत्तरय ज्ञानमात्रस्य न कारणत्वमपि तु वर्तमानकालिक

* सरस्वती *

प्रकारक पञ्चर्थमंताज्ञान ही कारण बने, विशिष्ट (परामर्थ) ज्ञान के मानने में
गौरव भी होगा ।

उत्तर—व्याप्यतावच्छेदक वे व्यज्ञान में भी बहुव्याप्यतान् इस ज्ञान से
अनुमिति होनी ची भव न हो पायेगी, लाभव भी है कि वैसा कार्यकारणवाव खो
मापने माना है उसको अपेक्षा व्याप्तिश्कारकपञ्चरथमंताज्ञान को ही
कारण बनाया जाय ।

और भी पूमवान् पर्वत इस ज्ञानपात्र से भी अनुमिति होने लगेगी, क्योंकि
व्याप्त (धूम) व्याप्तता (धूम में) व्याप्यता का अवच्छेदक (धूमत्व) है
महार (विद्योग्य) जिस ज्ञान में देखा जान वह हो गया ।

प्रथ—वर्चमानकाल में एहीं होते हुये व्याप्यतावच्छेदकप्रकारक पञ्च-
रथमंताज्ञान को कारण मानेंगे, इस से पूर्वोक दाय का बारण ही जावगा ।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षे

इति वाच्यम्, चैत्रस्य व्याप्तिपदे मैत्रस्य पश्चधर्मताज्ञानादनुमित्यापत्तेः ।

यदि तत्पुरुषीयगृहमाणव्याप्त्यावच्छेदकप्रकारकं तत्पुरुषीयपश्चधर्मताज्ञानं तत्पुरुषीयानुमितौ हेतुरित्युच्यते, तदाऽनन्तकार्यकारणभावः । मन्मते हु समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकपश्चधर्मताज्ञानं समवायसम्बन्धेनाऽनुमितिं जतयतीति नाऽनन्तकार्यकारणभावः ।

यदि हु व्याप्तिप्रकारवज्ञानं पश्चधर्मताज्ञानं च स्वरन्त्रं कारणमित्युच्यते

* प्रभा *

ग्रहणविषयभूतत्वत्तत्त्वापेक्षयत इति भावः । रामानाधिकरण (तत्पुरुषोपत) निवेशोनापि वारणित्युमाद तत्पुरुषीयेति । नेयाधिको दूषयति तदेति । तत्पुरुष भेदेन अनन्तानन्तकार्यकारणभावः सुट एव । स्वमते तदाहमानन्त्यम् परिदर्शिति मन्मत इति । असम्भावः, समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकपश्चधर्मताज्ञानं तत्पुरुषोपत भावं तत्रैव समवायेनाऽनुमितिरिति न उत्ति ।

तत्पुरुषीयवानिवेशेऽपि व्याप्तिप्रकारकं पश्चधर्मताज्ञानं च तदाहमानन्त्यम् कारणमिति नानन्तवायापाचारिति मीमांसकोरुचिस्थिरप्रस्थापयति यदि त्यिति । तथा

* सरस्वती *

उत्तर—इस प्रकार के उत्तर से चैत्र को व्याप्तिज्ञान देखा पैष को पश्चधर्मताज्ञान होने पर अनुमिति होने लगीगी । अतः वह उचित नहीं ।

अगर 'तत्पुरुष के द्वारा महेश होता हुआ व्याप्तिप्रकारकपश्चधर्मताज्ञान उसी पुरुष का पश्चधर्मताज्ञान उसी पुरुष की अनुमिति का कारण हो' ऐसा । कार्दकारण भाव बनालें तो अन्य के व्याप्तिज्ञान देखा अन्य के पश्चधर्मताज्ञान से अनुमिति की आपति दूर हो जायेगी, परन्तु पुरुषमेद से अनन्त कार्यकारणभाव हो जायेगे ।

मेरे (नेयाधिक के) मत में तो समवायसम्बन्ध से व्याप्तिप्रकारकपश्चधर्मताज्ञान समवायसम्बन्ध से अनुमिति को उत्तम करता है, इस तरह एक ही कारणभाव से काम चल जाता है ।

अगर व्याप्तिप्रकारकज्ञान देखा पश्चधर्मताज्ञान देने ही स्वतन्त्ररूप से कारण,

कुं न्यायसिद्धान्वमुक्तावलोक्ते

तदा कार्यकारणभावद्वयं, 'वहिन्याप्यो धूम आलोकवाक्ष पर्वत' इति
ज्ञानादप्यनुमितिश्च स्यात् । इत्येच यत्र ज्ञानद्वयं, सत्राऽपि विशिष्टानं
कल्पनीयम्, फलमुखगौरवस्यादोपत्वात् ।

* प्रभा *

च तथाविग्रानन्यवारणेऽपि कार्यकारणभावद्वयमनिवार्ये स्यादिति भावः ।

ननु नैयायिकमतेऽपि विशेषविशेषणमावकामनारेण (विनिग्रामकामावेन)
व्याप्तिप्रकारकृद्वधर्मतदानत्वेन पदधर्मत्वाविषयकव्याप्तिप्रकारकृद्वानत्वेन वा हेतु
तेति न किञ्चिद् वैषम्यमिति विनायामाह वहिन्याप्य इति । धूमेन सह व्याप्ति
ग्रह आलोकेन च पदधर्मतेति परामर्शादस्मादनुमित्यपापदिरनिवार्ये स्यादिति
रात्मयम् ।

न च यत्र व्याप्तिपद्धर्मत्वामध्यमेवानुमितिलक्ष्म पूर्वपक्षिपदिते स्यविशेषे
विशिष्टपैदित्यापगादित्यानुस्यन्त्याविशिष्टपक्षक्षमेवान्त्यापगामयेत्य
कारणाच
यले शाश्वतमान गौरवमावहत्येवेति शाश्वत, पदमुखगौरव न दोषाद्याप्तिमिति
न्यायेन अन्यत्रादरथकर्त्य परामर्शरथ तत्रापि स्वीकारे क्षत्यमावादित्याह इत्यर्थ
नेति ।

परामर्शकारिकावाऽ 'व्याप्तिपद्धतिवद्वी. परामर्श' उच्चते इति व्याप्तिः

* सरस्वती *

कहे ती भी दो कार्यकारणभाव हो जायें । चाथ ही 'वहिन्याप्यधूम आलोकवाक्ष'
पर्वत, इस समूहालम्बनज्ञान से भी अनुमिति उत्पन्न होने होगी ।

अतः जहाँ पर दो ज्ञान से भी काम चलता हो वहाँ पर भी अन्यत्र व्याप्तियह
रूप से माने गये गुरुभूत भी परामर्शशान को कारण मानना ही रहेगा । क्षेत्रक
जिस गौरव से उत्तम पद होता हो वहाँ दापद को उपेशा कर डस गौरव को भी
स्वीकार करना चाहिये ।

के फारिशाबली के

व्याप्तिः साध्यवदन्यमिथ्यसम्बन्ध उदाहृतः ॥ ६८ ॥

के न्यायसिद्धान्तमुकावली के

व्याप्ति नाम व्याप्त्याशयः, तत्र व्याप्तिः वेत्यत आह व्याप्तिरिति ।

* प्रभा *

गृहीतः, स च व्याप्त्याशयो व्याप्तिमान्, तत्र व्याप्तिः वेति प्रश्न आह व्याप्तिरिति । साध्यवदन्यमिति, असम्बन्धः, व्याप्तिः उदाहृत इत्यन्वयः । साध्यः अतिरिमिति साध्यमान्, साध्यतः अप्यः वर्तमन् । सम्बन्धः शृण्वन्वय, असम्बन्धो वृत्तिव्याभावः । तथा च साध्यर्थद्वाजनिस्तिरित्विलाभावो व्याप्तिरित्यर्थः । यस्मिन् साध्यते स पक्षः, यथा पर्वतः । यत् साध्यते तत् साध्यम्, यथा वद्धिः । मैन साध्यते लत् साधनं हेतुः, यथा धूमः ।

इदनु पूर्वमवधार्यम् । किमपि लक्षणं निर्दुष्टन्तदेव भवति यथ अव्याप्तिरित्याप्ति असम्भवदोषा न रुपः, एकस्यापि सत्यं दूषयत्येव । अतः दोषा इमे शास्त्राण्याः ।

कुशापि लक्षणे इष्टगत्यागमनमव्याप्तिः, यथा गोः कपिकत्ये लक्षणे श्वेतगत्यादी रक्षण न व्याप्ततोति अव्याप्तिदोषग्रासः । व्याप्तये इष्टगत्यागमनमव्याप्तिः, यथा त्रिहृष्टत्वे लक्षणे याक्षोपु छटमनेऽपि गोऽतिरिच्चमहिषादायपि तत्य (शृङ्खलव्याप्ति) सावेन अविद्यासिद्धोपग्रासः । इष्टगत्यागमनमसम्भवदः, यथा एकशक्तवत्त्वे लक्षणे कृते गोमात्रत्य एकशक्तवत्त्वायामावेन कुशापि गवि लक्षणं न गच्छति इति भवत्यसम्भवग्रासः ।

तथा च गोः तानि लक्षणानि विद्यय साखादिमव्यम् लक्षणं कियते तत्र न

* सरस्वती *

व्याप्त्य (व्याप्ति का आभय) उस में व्याप्ति नया है । इस वद्धा पर न्यायिका निरूपण करते हैं ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुच्चावली ५

वहिमान् धूमादित्यादौ साध्यो वहि., साध्यवान् महानसादिः, तदन्यः
बलहृदादिः, वदधृश्चित्यं धूमस्येति लक्षणसमन्वयः । धूमवान् वहेमित्यादौ

* प्रगा *

फ्रयापि दोषाय सम्भावनेति दोषवशून्य निर्गुण तदुप्यते । प्रकृते व्यासित्वशण-
स्थलेऽपि दोषाणामेवाम् वरिदार व्याकृत्यक् । एके सदेत्वा येरनुभितिः सम्यावते,
तेषु व्याहित्वशणसमन्वयः । तेषु कुञ्जापि विशेषे लक्षणागमनेऽप्यातिः स्पात् ।
पर्वेऽसदेत्वा देत्वाभासा वा, देषु लक्षणागमन नाभीष्मू, ते च नानुभितिं सम्पा-
दयितु लक्षणे इति तेषु लक्षणागमने भवत्यति यातिदेष । क्षियमाण व्यातिलक्षण
कुञ्जापि सदेत्वामेव न गमिष्यति चेद् भविष्यत्वरहम्यतो देष इत्यनुसन्धीते
सदेषवः । येन सम्बन्धेन साध्य स साध्यतावच्छेदकर्म, यथा
वहिमान् इत्यत्र सयोगः । देन रूपेण साध्य स साध्यतावच्छेदकर्म, यथा
वहिनिष्ठ वहित्यम् । देन सम्बन्धेन हेतु स देत्वावच्छेदकः सम्भवः, यथा
सयोगेन धूमस्य ईतुरेति सयोग । देन रूपेण हेतु स देत्वावच्छेदकर्म; प्रकृते
धूमत्त्वं धूमत्वम् ।

यथा पर्वतो वहिमान् धूमात् महानसवत् इति रथलम् ।

सम्भव्यदश्वारस्तु साध्यो वहि., साध्यवान् महानसादिः, तद्विज्ञा- उहृदादिः,
विज्ञिरूपित्वश्चित्यं पर्यादेः, इतित्वाभावो धूमरशेति भवति स व्याहित्यम् ।
सदेत्वानुभितिसम्पादनक्षमः । अयोगोऽकङ्क धूमवद् वहे इति व्यमिचारित्यते च
दक्षण न याति, तथादि—तत्र साध्यो धूम, साध्यवान् वर्वेत्वमहानसादिः (यथा यत्र

* सरस्वती *

साध्यवान् से अन्य में हेतु के न रहने को ही ध्याति परते हैं । सम्भव
वहिमान् धूमात् यहाँ पर साध्य है वहि, साध्यवान् है महानस एवं आदि ।
उस से मिल हुआ जडाशय, उस में धूम नहीं रहता ।

व्यमिचारित्यत्र ‘धूमवान् वहे’ इत्यादि में साध्यवान् से मिल तप्तोऽपि

ऋग्न्यायसिद्धान्तमुक्तावली

साध्यवदन्यस्मिस्त्वाय पिण्डादी वद्गेः सत्त्वाज्ञातिव्याप्तिः ।

अत्र येन साध्यन्देन साध्यं रोत्तेव सम्बन्धेन साध्यवान् वोध्य, अन्यथा समवायसम्बन्धेन वहिमान् वहेरवयवः, तदन्यो महानसादि:, चत्र धूमस्य विद्यमानत्वादव्याप्तिप्रसङ्गात् ।

साध्यवदन्यश्च साध्यवत्यावच्छिन्नप्रतियोगिताक्षेदवान् वोध्यः, तेन

* प्रमा *

धूमस्तिष्ठति) तद्विष्टो यथा जडादिः तथा तसाय पिण्डप्रप्ति, तथ वहिदेष्टोः वृत्तित्वमेव न वृत्तित्वमाव इति न लक्षणतिव्याप्तिः ।

ननु साध्यवदन्यनिरपित्तुचित्वामावमाप्तस्य लक्षणते 'पर्वतो वहिमान् धूमात्' अत्रैव अव्याप्तिः, तथा हि, साध्यो वहिः, साध्यवान् समवायसम्बन्धेन वहेरवयवः, तद्विष्टः पर्वतादिः, तद्विष्टपिता वृत्तित्वं धूमे, इति शङ्खारा समाप्ते अद्वेति । अयम्मावः, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवान् ग्रहीतव्यः, इदं च सयोगसम्बन्ध एव तथा । तथा च सयोगसम्बन्धेन माध्यवान् न वहुयवयवः, अपितु पर्वतादिः, तद्विष्टो जडादिः, तद्विष्टपित्तुचित्वामावो धूमेऽप्तत इति नाव्याप्तित्वमावना ।

नन्देवपि प्रकृतेऽव्याप्तिः, तथाहि साध्यो वहिपदेन यत्किञ्चिदिद्विः महान सीयः, साध्यवान् सयोगसम्बन्धेन महानस्मृ, तद्विष्टे पर्वतादी धूमस्य हेतोऽवृत्तित्व न वृत्तित्वमाव इति चेतदादृ साध्यवदन्यश्चेति । साध्यवत्येन अच्छिन्ना

* सरस्वती *

आदि में वहिरूप देत्तो के रह जाने से लक्षण की आविष्याप्ति न हुई ।

यहाँ पर जिस सम्बन्ध से साध्य हो उसी सम्बन्ध से साध्यवान् भी ऐना चाहिये । अन्यथा 'पर्वतो वहिमान्' यहाँ पर लक्षण नहीं आयगा तथा अव्याप्तिदोष ही आयगा । क्योंकि समवायसम्बन्ध से साध्यवान् (वहिमान्) वहि का अवयव, उस से भिन्न महानस आदि, उस में धूम रहता ही है ।

साध्यवद् से भिन्न भी साध्यवत्यावच्छिन्नप्रतियोगिताक्षेदवान् ऐना

क्षेत्र न्यायसिद्धान्वमुक्तावली के

यत्किञ्चिद्दहिमतो महानसादेभिन्ने पर्वतादौ धूमस्य सन्त्वेऽपि न क्षति ।

* प्रभा *

प्रतियोगिता यस्य स साध्यवस्थावच्छिन्नप्रतियोगिताकृ भेद, तदान् साध्यवदन्यो ग्राहः । अत्रेदमनुसन्धेयम्, यस्याभावः सोऽभावप्रतियोगी, प्रतियोगिनो भावः प्रतियोगिता, सा प्रतियोगिनि लिपुनि, प्रतियोगित्विर्धमः प्रतियोगिताया अवच्छेदकः, प्रतियोगिता च तद्मावच्छिन्नाभवति, वो यन्मो यस्यावच्छेदकः स तद्मावच्छिन्नाभवतीति सुरक्षयतीतेः । यथा ब्रह्मावस्थं प्रतियोगी घटः, प्रतियोगिता घटनिष्ठा, प्रतियोगितायच्छेदकम् पद्मवृत्तिं घटवस्थम्, इति प्रतियोगिता घटत्वेन अवच्छिन्नात्, तथा च घटत्वावच्छिन्नात् प्रतियोगिता यस्मैष्टशोऽभावः घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः घटाभावो अवच्छिन्नते ।

प्रकृते च साध्यवान् न (साध्यवदन्यः) इत्याकारको भेद, तत्प्रतियोगी साध्यवान्, प्रतियोगिता साध्यवदवदार्थं, प्रतियोगितावच्छेदक साध्यवदन्यम्, तेन धर्मेण अवच्छिन्नात् प्रतियोगिता, शादगप्रतियोगिताकथं स भेद, तदान् यः तत्त्विरूपितवृत्तित्वाभावोऽप्येति । यत्किञ्चिद्वद्दहिमान् न (महानसोपवद्दिमान् न, पर्वतीयवद्दिमान् न, चत्वरीयवद्दिमान् न) इति भेदः महानसीयवद्दिमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, पर्वतीयवद्दिमस्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, चत्वरीयवद्दिमत्वायच्छिन्नप्रतियोगिताको भवति ननु शुद्धवद्दिमवावच्छिन्नप्रतियोगिताक इति न ग्राह । यथा शुद्धसाध्यवदवावच्छिन्नप्रतियोगिताकः स एव वद्दिमान् न इत्याकारकः ग्रहीतव्यः, तदधिकरणं जलहृदादिरिति वदवृत्तिले धूमस्य नायासिरितं भावः ।

नवेदप्रति पर्वतो वद्दिमान् धूमादित्यप्रभवेदन्यासिः, तथाहि—साध्यता

* सरस्वती *

चाहिये, अन्यथा यत्किञ्चिद्वद्दहि (महानसीय वहि) भाव, महानसादि से भिन्न पर्वत आदि में धूमके रखने पर अव्याप्तिदोष हो जायगा ।

क्षम्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षम्य

येन सम्बन्धेन हेतुवा देनैव सम्बन्धेन साध्यवदन्यवृत्तिर्थं थोर्वर्यं, तेन साध्यवदन्यस्मिन् धूमावयवे धूमास्य समवायसम्बन्धेन सत्त्वेऽपि न क्षम्यः।

साध्यवदन्यवृत्तिर्थं च साध्यवदन्यवृत्तिर्थत्वावाच्चित्ताप्रतियोगिता-

* प्रथा *

वच्छेदकसम्बन्धजपञ्जुनसाध्यवदन्यवृत्तियोगिताको भेदः सबोगेन वहिमान् न इत्याकारकः, वद्यान् (तदधिकरणम्) यथा जलादिः तथा धूमावयवोऽपि, तत्र साध्यस्यावञ्जुनपतियोगिताकमेदति (साध्यवदन्यस्मिन्) धूमावयवे सम्बन्धसम्बन्धेन पर्यो वर्त्तते एव हति धूमास्य वृत्तिर्थ (अग्रवायशक्तिनो, समवायनियमात्) न वृत्तित्वाभाव इति चेदत्राह येन सम्बन्धेनेति ।

अथात् साध्यवदन्यविलिपितहृतिता हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन शेया । तथा च नाध्यत्वावच्छेदपतियोगिताकमेदति भवद्विदिः पूर्वोक्तदिशा विषमाणे धूमावयवे समवायसम्बन्धेन धूमो वर्त्ततासाम क्वा हानि । १ हेतुतावच्छेदकेन सबोगसम्बन्धेन तत्र धूमो न वर्त्तते इति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तित्वाभावस्त्वादेवेति नाभ्यासिसम्बवः ।

नन्देवपि अय पिण्ड धूमवद् वहो इत्यत्र अक्षणस्याविद्याति, तथादि तत्र साध्यो धूमं साध्यतावच्छेदकेन सबोगेन साध्यवान् पर्वतमहानसादिः, तदन्यः जलादादिः, तत्र सबोगेन हेतुतावच्छेदकेन सम्बन्धेन हेतो वहोः साध्यवदन्यजलहृदतिलिपि २ वृत्तिर्थं नास्ति वृत्तित्वाभावः सुवरामिति चेदत्राह साध्यवदन्येति । अथात् वृत्तित्वाभावनिवेशः फार्ये । वृत्तित्वाभावपतियोगिताथो वृत्तिर्थ

* सरस्वती *

द्वितीय सम्बन्ध से हेतु रहता हो उसी सम्बन्ध से साध्यवदन्यवृत्तिर्थ मी लेना चाहिये, अन्यथा साध्यवान् से भिन्न धूमावयव में धूम समवायसम्बन्ध से रहता हो है, भवाग्निदेव पुनः लगा रहेगा ।

साध्यवदन्य में अवृत्तिर्थ का अर्थ वृत्तित्वसामान्याभाव करना चाहिये,

ॐ न्यायसिद्धान्तसुकावली ॐ

कामावः, सेन धूमवान् वहोरित्यत्र साध्यवदन्यजलहृदादिवृत्तित्वाभावेऽपि
नाऽतिव्याप्तिः ।

* प्रभा *

लावच्छुद्ग्रस्वं शृतितात्वेतरधर्मानवच्छुद्ग्रस्वं च विवितपूर्वा । तथा च पर्वती-
वहिमान् इत्यादी वहिमदन्यः जगहृदादिः, रक्षित्विता शृणिता भीनशैवालादी,
शृणित्वाभावः (शृतितात्वावच्छुद्ग्रप्रतियोगिताक, शृतितात्वेतरधर्मानवच्छुद्ग्रप्रति-
योगिताकश्च शुद्गृच्छित्वायच्छुद्ग्रप्रतियोगिताकः) धूमे इति भवति समन्वयः ।
असदेतत्यते तु साध्यवदन्यजलहृदनिरपित्वृत्तित्व नास्तीत्याकारकाभावो भवतः
(सामान्यतः साध्यवदन्यगिरिहृषित्वृत्तित्वाभावो) वहिदेवी नायाति, कतोहि साध्य-
धूमवदन्यतात्प्रयिष्ठे वहिर्वर्तते एवेति तथा ग्रहणासम्भवः) तत्राभावीया
प्रतियोगिता शृतित्वनिःश्वा, प्रतियोगिताकन्तेऽक शृतित्वत्वम् जहृदनिरपित्वत्व च ।
तथा च प्रतियोगिता (शृतित्वनिःश्वा) न शुद्गृच्छित्वावच्छुद्ग्राभ्युपर्याप्ति अपि तु स्वेतर-
धर्मवच्छुद्ग्रापीति वादशोऽभावो न प्रदीप्तयते । किन्तु सामान्यतः साध्यवदन्य-
तत्प्रयिष्ठनिरपित्वृत्तित्वमेव वहिदेवात्विति स्पादति-यासिररिद्वारा ।

द्वयगुणकर्ममु त्रिपु पश्येयु सरानामी जातिरेका लिङ्गति एका च गुण-
कर्मान्यत्व (येर) विशिष्टा विशिष्टसत्त्वा, सा च वेवलद्रव्ये लिङ्गति । परम् यथा
कश्चिज्जनः वज्रादिविशेषासम्भवः स्वकीयनग्रावत्यतो न भिद्यते किन्तु स एवाप-
मिति शौकिकैर्मन्यते, तथैव विशिष्टसत्त्वापि शुद्गसत्त्वातो न भिद्यते 'विशिष्ट शुद्गा-
जातिरिच्यते' इति न्यायात् । एवज्ञ व्याप्तिलक्षणाय पूर्वोक्तस्य 'इद द्रूपं गुण-
कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्' इति स्थले सदेती श्यादव्याप्तिः । तथाहि—साध्यम्

* सरस्वती *

अन्यथा 'धूमवान् वहो' इस व्यापिचारित्यत्र में अतिव्याप्तिदीप होगा (लक्षण
स्त्री जायगा) वयोःकि साध्य (धूम) वान् से मिलजात्याशय में देख (वाह)
नहीं हो सकता ।

३ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली का

अत्र यद्यपि द्रव्यं गुणकर्मन्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टसत्त्वायाः
शुद्धसत्त्वायाश्चेक्षयात् साध्यवदन्यस्मिन् गुणादाववृत्तित्वं जातस्ति, तथाऽपि
हेतुतावच्छेदकरूपेणाऽवृत्तित्वं बाच्यम्, हेतुतावच्छेदकं तादृशवृत्तिसत्त्वा-
वच्छेदकमिति फलितोऽर्थः ॥ ६८ ॥

* ममा *

द्रव्यत्वं, समवायेन साध्यतावच्छेदकेन समन्वयेन तद्रूप द्रव्यम्, तदस्यः गुणः,
तत्र शुद्धसत्त्वा विष्टिति चेत् वाद्यज्ञा विशिष्टसत्त्वा (प्रहृतहेतुः) अति विष्टेदेवेति
साध्यवदन्यनिर्लिपितवृत्तित्वमेव हेतौ (विशिष्टसत्त्वायाम्) समागत न वृत्तित्वा-
भाव इति चेदधाह अत्र यद्यपीति ।

अथेति ज्ञात्यतावच्छेदकसंगमव्याप्तिक्षमसत्त्वावच्छेदकप्रतिशोणित्वानिरुपको
यो भेदः तादृशमेदाभिकरणनिरूपिता या इतिता तादृशवृत्तिताया अनवच्छेदक
यद् हेतुतावच्छेदक उद्दत्वम् अष्टमम् । समन्वयश्च सद्वेतुरूपेण वर्णते वद्विमानि
त्यादी तादृशो भेदः सयोरेति वद्विमान् न इत्याकारणः, तदधिकरणम् जडादिः
वस्त्रिरूपिता वृत्तिता मीने ननु धूमे, तादृशवृत्तितावच्छेदक मीनवृत्त्वम्, अनवच्छेद-
कम् धूमल, तदेव हेतुतावच्छेदकम्, तदवृत्त्वम् (धूमत्ववृत्त्वम्) धूमे इति ।

असद्वेतुरूपेण धूमवान् वहेत्यत्यादौ सयोरेति साध्यवान् (धूमवान्) मादान
भादिः, तदन्यो यथा हुदादिः तथैव तस्यापि पिण्डमयि, तमिति वृत्तिता वृत्तिता वृष्टी,
वृत्तितावच्छेदक वद्वित्यम्, तदेव हेतुतावच्छेदकमिति न लब्धणकान्तिः । विशिष्ट
सत्त्वाहेतुकामयेण स्वप्रकृते च शुद्धसत्त्वाया विशिष्टसत्त्वायाम् अभेदेऽपि सिद्धान्ते

* सरलकी *

यद्यपि 'द्रव्यं गुण' 'इस रूप के विशिष्टसत्त्वा दया शुद्धसत्त्वा के एक होने से
साध्यवान् से भिन्न गुण भावि में हेतु को अवृत्तित नहीं प्राप्त है तथापि उक्षण में
अभावोपरूपिता का अनवच्छेदक को हेतुतावच्छेदक तदृशल ऐसा निवेद्य करने
से दोप का निवारण हो जायगा ॥६८॥

ॐ न्यायसिद्धान्वमुक्तावली ४४

ननु केवलान्वयिति हेयत्वादौ साध्ये साध्यवदन्यस्याऽप्रसिद्धत्वाद-
न्यासिः, किञ्च सत्तावान् जातेरित्यादौ साध्यवदन्यस्मिन् सामान्यादौ हेतु-
सावच्छेदकसम्बन्धेन समवायेन पूर्वे प्रसिद्धत्वादब्यासिष्ठ,

* प्रभा *

चर्मयोः तद्विनोः सत्ताविषिटसत्त्वयोः अपेदाभावेन (भिन्नत्वेन) निर्बाहः ।
तथाहि समवायेन साध्यवद्द्विनो गुणः, तत्रिलिपिता वृत्तिता गुणत्वे, वृचिताया
अवच्छेदक गुणत्वलम्, वृत्तिताया अवच्छेदक विशिष्टसत्त्वम्, तदेव हेतुवा
कच्छेदकम्, तदत्त्वम् (विशिष्टसत्त्वत्वलम्) विशिष्टसाहेताविति समवये
अव्यासिष्ठित्वातः ॥६८॥

ननु तथापि इदं वाच्यं शेषत्वादित्यत्र तदेवो स्यादन्यासिः, तथाहि साध्यम्
यान्यत्वम् (सप्तपदार्थहृति) साध्यवन्तः सत्त एदार्थः, साध्यवदन्यम् न कथित्
प्रसिद्ध इति ऋषेन सामान्यवाभावात् । एवमेव सत्तावान् जातेरित्यत्र सत्तासाध्यकस्यले
(सदेवी) साध्यम् सत्ता, समवायेन साध्यापच्छेदेन सत्तायन्तः द्रव्यगुणकर्म-
यदार्थः, तदन्यसामान्यादिपदार्थः, तत्रिलिपिता हेतुवाकच्छेदकसमवायसम्बन्धा-
वच्छिक्षा वृत्तिरैव अवसिद्धा (सामान्यविशेषसमवायादिपदार्थेषु समवायसम्बन्धेन
क्रिमपि न तिष्ठति) इति साध्यवदन्यनिरूपितहेतुवाकच्छेदकसमवायवच्छिक्षाहृति-
स्याप्रसिद्धया क्षणागमनेन स्यादब्यासिष्ठकलद्वयस्येति चिन्तायाम् पूर्वपञ्चवासि-

* सरसवी *

प्रभ—शेषत्व (सप्तपदार्थहृति चर्म) आदि केवलान्वयित्वात् इति मे
साध्यवान् से भिन्न ही प्रसिद्ध नहीं, अतः लक्षण की अव्यासि होगी ।

और भी 'सत्तावान् जाते?' इस स्थल मे साध्य (सत्ता) वान् से भिन्न
सामान्य आदि पदार्थों मे हेतुवाकच्छेदक समवायसम्बन्ध से वृत्तिरैव (रणा) ही
अप्रसिद्ध है, लक्षण की अव्यासि हो जायगी ।

कारिकावली के

अथ वा हेतुमन्त्रिष्ठविश्वाप्रतियोगिना ।
साध्येन हेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरूच्यते ॥ ६९ ॥

न्यायसिद्धान्तमुच्चावली के

अत आह अध वेति । हेतुमति निष्ठा = पृत्तिर्यत्य स तथा विरहः =
अभावः, तथा च हेत्वधिकरणवृत्तिर्योऽभावस्तदप्रतियोगिना साध्येन सह
हेतोः सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरूच्यते ।

* प्रभा *

लक्षण विद्यय सिद्धान्तलक्षणी व्याप्तिस्थापयति अथवेति । अथवा, हेतुमन्त्रिष्ठ-
विश्वाप्रतियोगिना, साध्येन, हेतोः, ऐकाधिकरण्यम्, व्याप्तिः रूच्यते इति । हेतुः
अस्तविभिन्नतिहेतुमान् (हेत्वधिकरणम्) हेतुमति निष्ठा तस्य स हेतुमन्त्रिष्ठः (हेत्व-
धिकरणवृत्तिः) स चासौ विरहश (अभाव) हेतुमन्त्रिष्ठविरहः, तस्य अप्रतियोगि
हेतुमन्त्रिष्ठविश्वाप्रतियोगि गाध्यम्, तेन हेतुमन्त्रिष्ठविश्वाप्रतियोगिनः (हेत्वधिकरण
हेतुमन्त्रिष्ठविश्वाप्रतियोगिना) साध्येन सहेत्वाधिकरण्यम् (सामानाधिकरण्यम् एकाधि-
करणवृत्तिलभिन्नतियावत्) व्याप्तिः । समव्यक्त—पर्वतो चहिमान् धूमादिति
सहेतुस्थले हेतुः धूमः, हेतुमान् पर्वतादि, ततिष्ठः= उद्वृत्तिः, यो विरहोऽभावः
योगामाशादिः, तत्प्रतियोगी परादिः, अप्रतियोगी साप्तो वर्णिः, तेन सम धूमस्य हेतोः
सामानाधिकरण्यम् पर्वताद्यमन्त्रिष्ठेनेति ।

असद्गेतो धूमशान् यहेतियादी तु हेतु वर्णिः, हेतुमान् यथा पर्वतादिः हया
अष्टोगोऽनुकम्पिति, तद्वृत्तिरभावः धूमामाव, अभावप्रतियोगेव साप्तः, न अप्रति
योगीतिवारणम् ।

* सरस्वती *

उत्तर—पूर्वोक्त दोषों के कारण ही सिद्धान्तलक्षणव्याप्ति का आरम्भ किया जा
रहा है । अपर्याद हेतु के अधिकरण में रहनेवाला को अभाव, उसका क्षपत्रियोगी
लो साध्य, उसके साथ एक व्यधिकरण में रहने को ही व्याप्ति कहते हैं ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुलावलः ॐ

अत्र यद्यपि वडिमान् धूमादित्यादौ हेत्वविकरणपर्वतादिवृत्यभाव-
प्रतियोगित्वं चच्छ्रुष्यादेरत्तीत्यव्याप्तिः ।

* प्रभा *

इन्यु गुणकर्मान्वयविशिष्टस्त्वादियत्र च हेतुः विशिष्टसत्ता, हेतुमत् द्रव्यम्,
तद्वृक्षतिरभावो योऽपि कोऽपि, तत्प्रतियोगी अन्यः, अप्रतियोगि साध्य द्रव्यत्वम्,
तेन सम हेतोः विशिष्टसत्तायाः सामानाधिकरणेन सत्ता निर्णयाः ।

केवलान्वयित्वले तु हेतुः शेयत्वम्, हेतुमत् (डेपलवत्) शेयमात्रम्, तत्प्र-
भावः (व्याप्तिकरणघर्मविलक्षणादिः) योऽपि कोऽपि, तत्प्रतियोगी गवेशाम
कथन, अप्रतियोगि साध्यम् वाच्यत्वम्, तेन सम हेतोः शेयत्वस्य सामानाधिकरण्य
सम्मु प्रशार्थेषु प्राप्तदमिति ।

सत्तायान् 'जातेतित्यत्र च' हेतुः जातिः, हेतुमन्ति इन्युगुणकर्माणि, तद्वृक्षिः
अभावः सत्तदभावः, तत्प्रतियोगी स सः, अप्रतियोगि साध्य क्षत्ता, तथा सामानाधि-
करण्य जातिहेतोः पदार्थत्रये इति भवत्यक्षमिति रास ।

नन्देवमपि 'वडिमान् धूमात्' इत्यादी अव्याप्तिः, तथाहि हेतुः धूमः, हेतुमत्
पर्वतः, तद्वृक्षतिरभावः महानसीयवद्विनास्ति इति महानसीयवद्विप्रतियोगिकः,
हेतुमत् महानसम्, तद्वृक्षतिरभावः पर्वतीयवद्विनास्ति इति पर्वतीयवद्विप्रतियोगिकः,
एव रूपेण चालनीन्यादेन कश्चिदपि वद्विः साध्यः अप्रतियोगी नायति, सर्वे एव
बहुव्यः प्रतियोगी नानो जाताः इति समाप्तं कर्ते अत्रेति ।

* सरस्वती *

प्रथ—‘वडिमान् धूमात्’ इत्यादि में ही यह लक्षण नहीं जायगा क्योंकि
साध्यपद से तत्तद् (महानसीय-वत्वरीय पर्वतीय) वडि लैंगे, उन सबका
अभाव तत्पर्वतादि में (पर्वत में महानसीय वडि का, महानस में चालरीय
वद्विका) मिल जायगा, सभी वडि (साध्य) अभाव के प्रतियोगी ही हो
जायेंगे, अप्रतियोगि साध्य कौन सा मिलेगा ? अव्याप्तिदोष अनिवार्य हो
जायगा ।

४४ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली का

न च समानाधिकरणवहिभूमयोरेव व्याप्रिरिति चाच्यम्, तच्छुष्टा-
देरपुभयामावस्त्वात्, एकसत्त्वेऽपि हृयं नाइस्तीति प्रतीतेः । गुणवान्

* प्रमा *

न च एकाधिकरणहत्तिवहिधूमयोरेव तत्त्वशृणमिति पर्वतीयवहिपर्वतीयधूमयोर्ना-
व्याप्रिसम्बव इति चाच्यम्, वृष्टसत्त्वेऽपि घटयती न स्तः इतिवत् एकसत्त्वेऽपि द्वयं
नास्तीति प्रतीतेः सर्वजनसिद्धत्वेन धूमवति पर्वते पर्वतीयवहियमावस्त्वालभेऽपि पर्व-
तीयवहियतीमय नास्ति इत्यमावस्य आमेन अमावप्रतियोगिकुशी पर्वतीयवहिरपि
समागतत्वेन अप्रतियोगित्वविरहादव्याप्तेः सुरिपरवात् ।

नमु महानसीयवहिनासीत्वादयो विदेषाभावा एव विशिष्टाभावाः ॥४५॥ न्ते,
विशिष्टस्य मावः वैशिष्ट्यम्, एवं च वैशिष्ट्यवर्णनविज्ञुप्रस्तवम् निवेशते । तथा च
तत्त्वदिशिष्टाभावः वैशिष्ट्यवर्णनविज्ञुप्रतियोगिताकरण्या न ग्रहीयन्ते ।

एवम् व्याप्रिसम्बवहृत्तिव्य-एकत्वानविज्ञुप्रतियोगित्वम्
अपर्युद्दित्वं शिष्ट-उभयावादिधर्मः व्याप्रिसम्बवहृत्तिव्य- तद्वर्णनविज्ञुप्रतियोगि-
ताकरणप्रावस्य विवेशते ।

उभयाभावादाय दोषो दोषवे, सच प्रतियोगितायां वैशिष्ट्यव्याप्रिसम्बवहृत्ति-
धर्मानविज्ञुप्रतियोगितात्वनिवेशात् याधितुं शक्यः, यतोहि पर्वतीयवहिष्टोमय नात्तीत्य
भावीया पर्वतीयवहिष्टोमयनिष्ठा प्रतियोगिता उभयत्वादविज्ञुप्रतियोगिता, सच धर्मः व्याप-
स्तविष्टुतिः इति ताहाशाभावो न ग्रहीयते, अरितु घटाभावादिः तद्वितियोगित्वं
साध्यत्वं दुर्लभम् इत्यत आह गुणवानिति । अयग्र भावः, सद्गीत्या उभयाभावस्य

* सुरस्ती *

यदि कहिये कि समानाधिकरण (समान-एक अधिकरण में रहनेवाले)
बहु तथा धूम की ही व्यक्ति मानी जाय तो पूर्वोक दोष का कारण हो जायगा,
ऐसा भी नहीं कह सकते । क्योंकि इस प्रकार विशिष्टाभाव (विदेषाभाव) का
धारण ही जाने पर भी उच्चदृष्टि-पट इन दोनों (उभया) का अभाव मिल
जायगा, 'एक के रहते भी दोनों नहीं हैं' यह सिद्धान्त व्यवहारसिद्ध है । साथ

४३ न्यायसिद्धान्तमुकावली के
द्रव्यत्वादित्यादापव्याप्तिश ।

तथाऽपि प्रतियोगितानवच्छेदक यत् साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न-
सामानाधिकरण व्याप्तिरिति चाच्यम् ।

ननु रूपत्वब्याप्त्यजातिमत्त्वान् पृथिवीत्वादित्यादौ साध्यतावच्छेदिका
रूपत्वब्याप्त्यजातय, तासा च शुहत्वादित्यरूपाणा नीलघटादिवृत्यगाव-
प्रतियोगितावच्छेदकत्वमस्तीत्यव्याप्तिरिति चेत्त,

* प्रभा *

पठुं भशक्षत्वेन पर्यंतो वद्विमान् इत्यादौ बारणेऽपि वर्तु गुणवान् द्रव्यत्वात् अन
द्रव्यत्व देहु, तथ आतिरित्येकमेव न मित्र मित्रम्, द्रव्यत्वत्वर्तु द्रव्य तत्तदिति,
द्रव्यत्वाधिकरण द्रव्य जलम् तथ गच्छे गुणो नास्ति, द्रव्यत्वाधिकरण वायु, तत्
रूपगुणो नास्ति, द्रव्यत्वाधिकरणम् पृथ्वी, तत् स्नेहो नास्ति इति रीत्या चाङ्गनो यायेन
सर्वाऽपि गुणः साप्त अभावप्रतिपेदैव नाशतिथोगीनि भवेदव्याप्तिः । द्रव्यत्वस्य
देहो अगति एकमात्रपूर्वत्वेन 'समानाधिकरणप्रोप्त्यसि' इतिरीत्याप्त्यव निर्णयो
न भवितुमदेहु । इत्यत आद तथापीति । अपमात्रय, देत्प्रिकरणवृत्तियोऽप्याव
तदीया या प्रतियोगिता तदनवच्छेदक यत् साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्नसाप्त-
सामानाधिकरण व्याप्तिरिति लक्षण कायम् । समन्वयश्च पर्यंतो वद्विमानित्यादौ
देहुपूर्म, तदविकरणम् पर्वतादि, सदृशविरभावो धृष्टमाव, सत्पत्तियोगिता यते,
प्रतियोगितावच्छेदक घटकम्, प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदक वद्वित्यम्,

* सरस्यतो *

दी गुणवान् द्रव्यत्वात् में अव्याप्ति भी हो जाएगी ।

उत्तर—अभावप्रतियोगिता का अनवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक तदव
च्छिन्नसामानाधिकरण को ही व्याप्ति दवायेगे, किसी प्रकार का दोष न होगा ।

प्रश्न—रूपत्वब्याप्त्य । इस सदेतुस्थल में साध्यतावच्छेदक होगी रूपत्वब्याप्त्य
आतियो, सभी चाङ्गनीत्याव से नीलगू भादि में रहनेवाले ताचद्भमाय की प्रति
योगितावच्छेदिका ही हो जायेगी, इस प्रकार अन्याहितोप लग जाएगा ।

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

तत्र परम्परया हृष्टव्याप्यजातित्वस्यैव साध्यतावच्छेदकत्वात्,

* प्रसा *

तदयन्ति तः साप्तो बहुः, तत्सामानाधिकरण्यं धूमस्येति । धूमबात् धूनेत्यन् तु ऐदः वदिनः, तदविकरणम् पर्वतादिवत् तपाय-पिण्डमणि, तदृचिरभावः धूमामादः, तदतियोगिता धूमनिदा, प्रतियोगितावच्छेदक धूमत्वम्, तदेव साप्त-तावच्छेदकमिति न व्याप्ताकान्तिः । गुणान् इवत्वादित्य च ऐदः इवत्वम् सदधिकरणम् तदविभादिद्रव्यं गुणाम्, तत्र रूपं नास्ति रसो नास्ति गूचो नास्तीयेव मादोऽभ्याश एष्टवाम्, उच्चदमावप्रतियोगिता वृक्षदूर्घातादिगुणे प्रतियोगितावच्छेदकं तदृचूर्घातरक्तवादि, अनवच्छेदकं साप्ततावच्छेदकं गुणत्वम्, तदवच्छुते गुणः, तत्सामानाधिकरण्यं द्रव्यत्वस्येति भवेद् दोषभावा ।

मन्त्रेणमणि षट् हृष्टव्याप्यजातित्वात् पृथिवीवात् हृष्टव्याप्यजातित्वात् हृष्टव्याप्यजातिः साप्ता, पृथिवीवं ऐदः, इति सदेती रपाद्यासिः, तपादि-हृष्टव्याप्यजातिः चात्यः शुद्धत्व-नीडत्व-वीत्व-इरित्व-नक्त्व-करित्व-चित्तत्वानि, ऐदुःशुष्ठीत्वम्, तदविकरणं यदि नोनो चदो विषते तदा तत्र गुक्षो नास्ति इत्यभावः, चाद शुक्लो धरो शृदते हृदा तत्र नोनो नास्ति इत्यभावः, यदि इरित्वतदा तत्र दीपो नास्तीत्यभावः एवम् चान्मीनवायैन उर्ध्वमावलाभे शुक्लभावप्रति-योगितावच्छेदक शुक्लत्वम्, पोतामायप्रतियोगितावच्छेदकम् पीतत्वम्, नीत्यामाय-प्रतियोगितावच्छेदक नीत्यम्, इतिभावप्रतियोगितावच्छेदकम् इरित्वम् इति शैल्या रूपव्याप्याः सत् अपि शुक्लत्वनीडत्वादिजातिः प्रतियोगितावच्छेदिका एव जाता, ता षष्ठं च साप्ततावच्छेदिकाः इति प्रतियोगितावच्छेदकमावला-वच्छेदकावलमित अनियाहाद इति शैल्यामाद रोगेति । अपाभावः, प्राप्ते इष्टानुरोगेन भव्या एवत्याप्ता, साधारणतः साप्ततावच्छेदकमावलमिते रूपत्व-व्याप्यजातिमान् साप्तः, साप्तता हृष्टव्याप्यजातिमणिष्ठा, साप्ततावच्छेदकम्

• सरस्पती •

द्वात्र—स्वाभवाप्रदकरणप्रसाहनव्यय से इन्हाँसक में हृष्टव्याप्य-

क्षु न्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षु

न हि ताटशधर्मविक्तिउप्राभावं काऽपि पूर्यिव्याप्तिः, रूपत्वव्याप्तिः जाति-
मात्रास्तीति चुद्धयापत्ते ।

एव दण्डयादौ साध्ये परम्परासम्बद्ध दण्डवाद्विक्तमेव साध्यतावच्छेद-
दक्ष तथा प्रतियोगितानवच्छेदकमिति ।

* प्रभा *

रूपत्वव्याप्तिः जातिमत्वम्, तच प्रकृतिभूययेषु प्रकाशीमूर्ते भावं इति रीतिः पूर्यिव्याप्तिमात्रम् प्राप्तोति । वरमत्र रूपत्वव्याप्तिः जातिमत्वम् साध्यतावच्छेदकम् मात्रम्, परम्परारम्भयसनावायसम्बन्धेन । त्वम् रूपत्वव्याप्तिः जातित्वं तदाभ्यः रूपत्वव्याप्तिः, तदेवमवायो रुपमात्रे । एव च पूर्वोक्तरैत्या तत्तदनीलत्वादि जातीनां प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि न इनि तथाहि प्रतियोगितावच्छेदिका भवतु नापि नीलत्वाद्यो जातय, परन्तु साध्यतावच्छेदक रूपत्वव्याप्तिः जातिमत्वम् सद्य-प्रतियोगितानवच्छेदकमेव, तदेवच्छिक्षा स्वाभावामपवसम्बन्धेन स्वात्म द्यायजातिमत्त, तसामानाधिकरणम् पूर्यिवीत्वत्य हेतो स्पादिति न देष । तदेव स्वात्मयति नहीति । पूर्यिवीमात्रे (कामि वगारी) रूपत्वव्याप्तिः जातिमान भारीति चुद्धिर्न भवति ।

परम्परा साध्यतावच्छेदकप्रसङ्गादाद रूपत्वन्वरमविएवमिति । 'मठो दण्ड-
मान् दण्डसंयोगात्' इत्यत्र मठ एव, दण्डमत्य साध्यम्, दण्डसंयोग हेतु, साध्यतावच्छेदको दण्ड, अथ दण्डसंयोगस्य हेतोरधिकरणम् मठ, तदृष्ट्यमाव तदप्ती नात्ति, तदप्ती नात्ति इति चालनीन्यायेन तत्तदण्डव्याप्तावा, तच्चदभावीया प्रतियोगिता तदण्डितिः, अभावव्यतियोगितावच्छेदक तदण्ड इति, स एव

* सरस्वती *

आठिंत ही साध्यतावच्छेदक माना जायगा, न कि तदृष्ट्यमाव आदि जातियाँ । इसी भी पृष्ठी में 'इत्यत्वव्याप्तिमान् नहीं है' ऐसी प्रतीति नहीं होती ।

इसी प्रकार दण्डमान् दण्डसंयोगात् इत्यादि एव भी परम्परापुन्नभ
से दण्डत्वं आदि ही साध्यतावच्छेदक होते हैं, वे प्रतियोगितानवच्छेदक भी ।

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

साध्यादिभेदेन व्याप्तेभेदात् ताटशरथले साध्यतावच्छेदकदावच्छेदकं प्रतियोगितावच्छेदकदावच्छेदकमित्येव लक्षणघटकमित्यपि बदन्ति ।

* प्रभा *

च साध्यतावच्छेदक इति स्पादव्याप्तिः । परन्तु पूर्वोक्तरीत्या स्वाध्यायाध्यत्वरूपं परम्परासम्बन्धेन दण्डत्वं साध्यतावच्छेदकम् । तथा च तत्तदण्डो भवेत्प्राम प्रति योगितावच्छेदकः प्रतियोगितावच्छेदक साध्यतावच्छेदक दण्डत्वम् स्वाध्यायाध्यत्वं सम्बन्धेन तदवच्छिद्धसामान्याधिकरणपूर्वव्याप्तिलक्षणसमन्वयेऽदोपात् । दण्डसयोर्गाथये क्वापि मठे स्वाध्यायाध्यत्वरूपपरम्परासम्बन्धेन दण्डत्वाद्याहरीति पत्थयो न भवति कदापीति हृष्टपम् ।

ननु परम्परासम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकव्यवस्थापिका पदतिः कुतो नोपत्त इति चेत् ? 'साध्यसाधेनभेदेन व्याप्तिभेद' इति सिद्धान्तात् ताटशरथले व्याप्तिलक्षणस्य मित्रस्य स्वीकारात् । तथा च तथ ईत्यधिकरणहत्यभाव तियोगितावच्छेदकतावच्छेदक यत् साध्यतावच्छेदकतावच्छेदक उदाध्यायावच्छिद्धसामान्याधिकरण्य हेतोर्थाङ्गिरिति । तदाह साध्यादिभेदेनेति ।

ननु एषो द्रव्य गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात् इति स्पले शुद्धविशिष्टसत्त्वोर्भेदेन शुद्धसत्त्वाधिभविशिष्टसत्त्वादेतोर्थविकारण गुण, तदशुचिभाव द्रव्यत्वं, नात्मत्वं, प्रतियोगिता द्रव्यलनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्वत्वम्, तदेव साध्यतावच्छेदकमिति कथं लक्षणसमन्वय इति चेत् ? ऐतुतावच्छेदकविशिष्टहत्यधिकरणहत्यभावेत्यादिलक्षणकरणाददोपात् । तथादि—ऐतु गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्, सुत्ता, ऐतुवा ताटशरथानिष्ठा, देवतावच्छेदकं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वम्, सद्विशिष्टा गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वा, हत्यधिकरण द्रव्यम्, सदशुचिभाव धय-

* सुरखती *

साध्य, साधन के भेद से व्याप्ति भी भिन्न भिन्न होती है इस सिद्धान्त से साध्य तावच्छेदकता का अवच्छेदक जो यह प्रतियोगितावच्छेदकता का अवच्छेदक हो गेता ही लक्षण बना देना चाहिये, यह किसी का भत्त है ।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्ताकली क्षे

हेत्वधिकरणं हेतुतावच्छेदकविशिष्टाधिकरणं बोध्यम्, तेन द्रव्यं गुण-
कर्मान्वयविशिष्टसत्त्वादित्यादौ शुद्धसत्त्वाधिकरणगुणादिविष्टाभावप्रक्रि-
योगित्वेऽपि द्रव्यत्वस्य नाऽन्यासिः ।

एवं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणं बोध्यम्, तेन समवायेन

* प्रभा *

भावादिव्यः कश्चिदपि, तदप्रतिवेणि साध्यम् द्रव्यत्वम्, हेतुना तदवच्छेदसामा-
नाधिकरण्यसत्त्वेन लज्जणसम्बन्धात् ।

न च तथापि हेतुतावच्छेदक विशिष्टसत्त्वात्, तदविशिष्टा गुणकर्मान्वयवि-
शिष्टसुना, सा च शुद्धसत्त्वानतिरिक्ता, इति पुनः पूर्वदोषः सुध्य इति बोध्यम्,
हेतुतावच्छेदकविशिष्टवदेन हेतुतावच्छेदकाशच्छुद्धनिरूपकरणानिस्पिष्ठाधिकरणत्व-
विशिष्ट यद् हेत्वधिकरणमिति विवक्षया निर्वाहात् । तथाहि—विशिष्टशुद्धसत्त्वो-
रैत्येऽपि हेतुतावच्छेदक गुणकर्मान्वयविशिष्टसत्त्वात्, तदवच्छेदसनिरूपकरणानिरू-
पिताधिकरणता भिन्ना, सा च द्रव्य एव—न गुणकर्मणोः, शुद्धसत्त्वात्वाच्छुद्ध-
निरूपकरणानिस्पिष्ठाधिकरणता भिन्ना, सा च द्रव्यगुणकर्मसु समाना । एति विशिष्ट-
सत्त्वाधिकरणत्वं हेतुतावच्छेदकविशिष्टत्वेन कादापि न गुणकर्मणोः, किन्तु द्रव्य
प्रवैति नान्यासिः । तदाह वेत्तव्यधिकरणमिति ।

नव्येभिः ‘पर्वतो वहिमान् धूमात्’ इत्याचायासिः; तथाहि हेतुः धूमः, तदपा-
धिकरण समवायसम्बन्धेन धूमाववाः, तदवच्छेदभावः स वहयमावः, तदप्रति-
योगी वह्निः साध्य इति चेत्ताह एवमिति । तथा च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन
हेत्वधिकरणहृष्यभावेत्यादिलक्षणम् । अप्य च हेतुतावच्छेदः सम्बन्धः संयोगः,

* सरस्वती *

हेतु का अधिकरण हेतुतावच्छेदकविशिष्ट का अधिकरण देना चाहिये । अतः
द्रव्यत्वसाप्तविशिष्टसत्त्वाशेषु दृष्ट्यङ्ग में शुद्धसत्त्व के अधिकरण गुण आदि में
रहनेवाले अभाव आ प्रतियोगी देने पर मी अव्याहित न हुआ ।

हेतु का अधिकरण भी हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से लिया जाएगा । अतः

॥ न्यायसिद्धान्तगुच्छावली ॥

धूमार्घिकरणतदवयवनिष्ठाभावप्रतियोगित्वेऽपि घट्टेर्नाऽन्यात्मा ।

अभावश्च प्रतियोगित्वाविकरणो बोध्यः । तेन कपिसंयोग्येतद्वृक्ष-
त्वादित्यादावेतद्वृक्षयुच्चिकपिसंयोगाभावप्रतियोगित्वेऽपि कपिसंयोगात्म-
नाऽन्यात्मा ।

* प्रमा *

तेन समन्वयेन धूमव्यावन्तुलाभिकरणम् पर्याप्तिः (न धूमव्यवः) तद्वृत्तिर-
भावो घटाभावादिरिति समन्वयेन दीयाभावः ।

ननु तथापि वृक्षः कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात् इति सदेत्यत्त्वे कपिसंयोगः
साध्यः, तत्र शासाणां कपिसंयोगः, मूले कपिसंयोगाभावः इति स्थितिः । हेतुः
एतद्वृक्षत्वम्, 'तदविकरणं वृक्षः, वद्वृत्तिरभावः मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभावः,
तत्प्रतियोगी कपिसंयोगः' प्रतियोगितावच्छेदेन कपिसंयोगत्वम्, तदेव तु साध्य-
तावच्छेदत्वम् इति भवेद्व्याप्तिरिति चेदशाह अभावश्चेति । तथा च अभावः
प्रतियोगित्वाविकरणो ग्राहः । प्रकृते यः कपिसंयोगाभावो वृक्षः स न प्रतियोगि-
त्वाविकरणः, यतो हि वृक्षः अभावप्रतियोगिनः कपिसंयोगस्याविकरण शासा-
वच्छेदेन, कपिसंयोगाभावस्याविकरण मूलावच्छेदेनेति अभावोऽयम् प्रतियोगि-
समानाभिकरणो ननु प्रतियोगित्वाविकरणः, किन्तु घटाभावादिस्ताहशो ग्राह इति
दोषवारणसम्भवात् ।

ननु एवमपि किञ्चाम अभावे प्रतियोगित्वाविकरणत्वम् । यदि प्रतियोग्यन-
विकरणवृत्तित्वम् तदा पुनर्स्तत्रैवाव्याप्ता, तथाहि ऐत्यविकरणम् एतद्वृक्षः,

* सरस्वती *

समवायसमन्वये धूम के अविकरण धूमावदव में रहनेवाले अभाव का प्रतियोगी
होने पर भी यहाँ के अव्याप्ति से फुर्रे ।

धूमाव मो प्रतियोगित्वाविकरण लेना चाहिये । अतः कपिसंयोगी*****इस
सदेत्यत्त्व में एतद्वृक्षयुच्चिकपिसंयोगाभाव का प्रतियोगी होने पर भी कपिसंयोग
के अव्याप्तिदोष नहीं क्या ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुख्यावली ॥

न च प्रतिषेगिव्यधिकरणत्वं यदि प्रतिषेग्यनधिकरणवृत्तित्वम्, तदा वर्तेवाऽव्याप्तिः, प्रतिषेगिन् कविसयोगस्याऽनधिकरणे गुणादौ वर्तमानो योऽभावस्तस्यैव वृक्षे मूलावच्छेदेन सत्त्वात् । यदि तु प्रतिषेग्यधिकरण-वृत्तिं, तदा सयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्ति—सत्त्वाधिकरणे गुणादौ य सयोगाभावस्तस्य प्रतिषेग्यधिकरणद्रव्यवृत्तिकादिति वाच्यम्,

* प्रधा *

तदृत्तिः य अभावः कविसयोगाभावः, स प्रतिषेग्यनधिकरणवृत्तिरिति, यतोदि प्रतिषेगी कविसयोगः, तस्यनधिकरणं गुणं (गुणे गुणो न तिष्ठति इति न्याय दाव्यादिदान्तात्) स एव मुण्डतिकपिसयोगाभावो वृक्षे मूले लम्बते इति प्रतिषेगिव्यधिकरणत्वस्यामावे सत्त्वादित्याप्ति-सुस्थिरेन शङ्खायामाद यदि त्विति । अभग्नावः, प्रतिषेगिव्यधिकरणत्वम् प्रतिषेग्यधिकरणवृत्तित्वम् । तथा चाप्रवृक्षवृत्तिकपिसयोगाभावः अधिकरणे (कविसयोगत्वं) अधिकरणे वृक्षावच्छेदेन वर्तमान इति न स प्रतिषेगिव्यधिकरणं प्रतिषेग्यधिकरणवृत्तिरिति भवेद् दोषपरिहार ।

नवैवग्रहुत्यमुक्त्या सयोगी सत्त्वादिति अतादेतुस्थले सयोगात्पक्षतादेतुर्वे

* सरस्वती *

प्रतिषेगिव्यधिकरणत्वं का धर्प विमले वे द्वारा प्रभ करणे कह रहे हैं ।

१—यदि प्रतिषेगी के अनधिकरण में वृत्तित्व ही वह ही हो पुनः अव्याप्ति समोरह आयगी । क्योंकि अभाव का प्रतिषेगी जो कविसयोग उसके अनधिकरण गुण में रहनेवाला जो अभाव (कविसयोगाभाव) वहो मूल में वृक्ष में भैडा है ।

२—यदि प्रतिषेगी के अधिकरण में भौति अभाव ऐडा वर्य करे तो पूर्वदेश का नियाण होने पर भी ह्रुत्यमुक्त्या 'सयोगी सत्त्वात्' यहाँ पर अविव्याप्ति ही आयगी । क्योंकि सत्त्वा के अधिकरण हुए आई में जो सयोगाभाव वह प्रतिषेगी (सयोग) के अधिकरण द्रव्य में मो वृक्ष (रहनेवाला) है । अह यहाँ पर साप्ताभाव नहीं पहचा आयगा । अभावान्तर ऐकर अविव्याप्ति हग आयगी ।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुकावली क्षे

हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणशृंसितविशिष्टय विवशितत्वात्, स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यमाव इति निष्कर्षः ।

प्रतियोग्यनधिकरणत्वं च प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिनानधिकरणत्वं

* प्रमा *

अतिव्याप्ति स्यात्, तथाहि—हेतुः सच्चा, तदधिकरणम् द्रव्य गुण कर्म च, तत्र गुणे य संयोगमाव स स्वप्रतियोगिन संयोगस्थाविकरणे मूलावच्छेदेन वृष्टद्रव्ये वर्तते इति न प्रतियोग्यधिकरणावृत्ति प्रतियोगित्यधिकरण इति न विषेत, प्रियेत च कम्भिदन्यामाव, इति प्रतियोगितानवच्छेदकसाधतावच्छेदके त्यादिस्थागश्चान्तिसङ्कल्पात् इति वाच्यम्, हेत्वधिकरणावच्छेदेन प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तिविशिष्टस्य विवरणात् । निष्कर्षमाह स्वप्रतियोग्यनधिकरणीति । अर्थात् स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूत यद् हेत्वधिकरणवृत्त्यमावः प्रतियोगित्यधिकरणो नाम । हेत्वाविकरणावच्छेदेन स्वप्राप्तियोग्यनधिकरणवृत्तिरूपैर्य । तथा च* कपिसंयोगी पत्रद्वृष्टल्लादित्यश्च गुणस्य हेत्वधिकरणव्याख्यादेन कपिसंयोगमावो न हेत्वधिकरणावच्छेदेन स्वप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तिरिति न स ग्रहीयत इति नान्यापि । असदेतो संयोगी सर्वादित्यश्च तु संयोगापातो ग्रहीयते, “गुणस्य हेत्वधिकरणत्वात् हेत्वधिकरणावच्छेदेन प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तिवस्त्रप्रतियोगित्यविकरणव्याख्यात्, एव च नान्यापिरपेति ।

मन्त्रवप्यविशिष्टसत्त्वात् जातेरित्यसदेतो विशिष्टसत्त्वासाध्यके जातिहेतुके जात्यधिकरणे गुणे साध्यावादस्य विशिष्टसत्त्वामावस्य ग्रहणव स्यात्, विशिष्टशृद सत्त्वयोरमेदेन सच्चालमप्रतियोगिसमावाघकरणत्वात् प्रतियोगित्यधिकरणत्वाम वाचस्येवि शकायामाह प्रतियोग्यनधिकरणत्वं चेति । तथा च प्रतियोगितावच्छेद

• सरस्वती •

समाधान—हेत्वधिकरण) में प्रतियोगी के अनधिकरणवृत्तिविशिष्ट जो अमाव ऐडा भय कर देंगे । स्वप्रतियोगी का अनधिकरणीभूत जो हेत्वधिकरण उसमें इनेवाला जो अमाव यह स्पष्ट्यर्थ होगा ।

प्रतियोग्यनधिकरण भी प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का अनधिकरण कहा

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावदी ॥

वाच्यम्, तेन विशिष्टसत्त्वावान् जातेरित्यादौ जात्यधिकरणगुणादौ विशिष्टं सत्त्वामावस्थं प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वेऽपि न क्षमिः ।

अब साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनविकरणत्वं बोध्यम्, तेन

* प्रमा ॥

दकावच्छिद्यानविकरणवम् प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिद्यनिरूपकतानिरूपिताधिकरणताशूल्पत्वम् । प्रकृतेऽप्त्वेतुस्यते च विशिष्टसत्त्वाभावो महीयते, यतो हि विशिष्टशुद्धसत्त्वोरैक्येऽपि सत्त्वावच्छिद्यनिरूपकतानिरूपिताधिकरणता मित्रा विशिष्टसत्त्वावच्छिद्यनिरूपकतानिरूपिताधिकरणता भवेति सिद्धान्तरोत्ता विशिष्ट-सत्त्वावच्छिद्यनिरूपकतानिरूपिताधिकरणता न गुणे, इति गुणे विशिष्टसत्त्वाभावः प्रतियोग्यविकरणसिद्धस्तद्याइणेनात्याहिनियसारस्यात् । एतावत्यन्तं शब्दाखेन समक्ष लक्षणगत्वा खप्रतियोगिताय-देवकावच्छिद्यनिरूपकतानिरूपिताधिकरणताशूल्पत्वे देवतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिद्यनिरूपकावच्छेदकावच्छिद्यनिरूपकतानिरूपिताधिकरणतावान् य. सविष्ठो योऽप्यायः तद्यतियोगितामवद्येदक यस्याय-वावच्छेदक तद्यवच्छिद्यसाध्यसमानाधिकरण देहोप्यर्थसिरिति ।

अथ ज्ञानवान् सत्त्वादिति समवायेन ज्ञानसाध्यके सत्त्वादेवक्यमित्रास्त्वेऽप्त्वेदेवो हेतोः सत्त्वावाः अविकरण धरादि, तच्छिद्योभावो न ज्ञानाभावः (ज्ञानविषयात्तासम्बन्धेन धर्यत्वत्) इति तत्य विषयतात्त्वमवन्येन ज्ञानस्यात्तियोगिसमानाविकरणत्वात् प्रतियोग्यविकरणत्वाभावात् । अतोऽप्त्वेनात्तर ग्राह्यम् इति भवेद्व्यातिरिति राहुषायो समावनमाह अश्रेति । अर्थात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यविकरणत्वमहेन विषयतासम्बन्धेन ज्ञान धर्यताम् न क्षमिः हनिः, समवायेन ज्ञान तत्र (पटे) नास्तीति ज्ञानाभावः, प्रतियोग्यविकरण, मुडमः

* सरस्वती *

होता । जिससे 'विशिष्टसत्त्वावान् जाते' यहाँ पर ज्ञाति के व्यविकरण गुण आदि में विशिष्टसत्त्वाभाव के प्रतियोगिसमानाधिकरण होते पर मी अतिन्याति न हुए ।

यहाँ साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से प्रतियोग्यनविकरणत्व विवित है । अतः

ન્યાયસિદ્ધાન્તમુલ્કાવળી

शानवान् सत्त्वादित्यादौ सचाधिकरणपटादेविप्रयतया शानाधिकरणत्वेऽपि
न क्षतिः । इत्यं च वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमाधिकरणे समवायेन वह्नि-
विरहसत्त्वेऽपि न क्षतिः ।

ननु प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कास्यचित्प्रतियोगिनोऽन-
पिकरणत्वं ? रत्सामान्यस्य वा ? यत्क्षम्बित्पदियोगितावच्छेदकावच्छि-
ञ्चानधिकश्णत्वं वा ? विवक्षितुम् ।

• 891 •

तथा चातिव्यस्थिपरिदारस्मृकः ।

साधपतायच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिव्यविहारणहृतनिवेशात् प्राक् पर्वतो वष्टि
मात् घूमादिति सद्देतावपि प्राप्तामव्याप्ति वारवति इत्यं चेति । घमादिक्षरणे
पर्वते सम्बन्धयोने वद्धयभावो न प्रतियोगिव्यविहारणः, प्रतियोगिनो वहुं सुयोगेन
पर्वतवृत्तिवादिति यदाभासादिक तादृगमादाय लक्षणसुमन्वये वारकामावात् ।

नगु जातिदेवके विद्युषसचासाधके व्यमित्वारिणि अतिव्यासिनिरासाय प्रति-
योग्यनविकरणस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिलानविकरणतरसोऽप्योऽप्नोऽप्नः ।
तत्र जिद्धास्यते नन् इति । तत्त्वामांयस्य = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिलासा-

१८४

‘शानवान् सत्त्वात्’ इस असद्देहृष्टपल में सत्ता का अधिकारण जो घट आदि, विषयवासमन्वय से उसके शानाधिकरण होने पर भी अतिव्याप्ति न हो।

- इस निवेदा से यह भी लाभ हुआ कि 'वैदिनमान् धूमात्' इस सद्बृहस्पति में धूम के अधिकारण में समवायसमन्वय से वैदिन का अभाव मिलने पर भी अव्याप्ति न होगी।

प्रश्न— १. प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिद्य जिस किसी प्रतियोगी का अनुचितरण
२. प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिद्य सामान्य का अनुधिकाण ऐ विचारित्युपर्याप्ति-
योगितावच्छेदकावच्छिद्य का अनुचितरण, देखा जानी है।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्तावल। क्षे

आये कपिसंयोगी एतद्वृद्धत्वादित्यादौ तथैवाज्यामि:- कपिसंयोगा-
भावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो वृक्षावृत्तिकपिसंयोगोऽपि भवति
वदनपिकरणं वृक्षं इति ।

* प्रभा *

मान्यता । पश्चवप्रमुद्गाम्य यथाकर्म दूषयति आय इति । प्रतियोगितावच्छेदका-
वच्छिन्नम्य यस्य क्लस्यकिप्रतियोगिनोऽनधिकरणत्वविवक्षणे कपिसंयोगी एतद्वृद्ध-
त्वादित्यादौ सदेतौ कपिसंयोगाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो वृक्षावृत्तिकपि-
संयोगोऽपि, तदनपिकरणं वृक्षं इति प्रतियोगित्यविकरणत्वेन कपिसंयोगाभावप्र-
महेण अव्यासितोपस्य महापात्रात् ।

प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नामान्यस्यानभिकरणत्वविवक्षणे प्रतियोगित्यनि-
भरणामावाप्तिद्या रुद्देतुपात्रे लक्षणसमन्याभावेन अलग्भवानात् । तथाहि—
सदेतौ पर्वतो बहिमात् धूमादित्यत्र देतुर्मुः, तदधिकरणम्, पर्वतः, तदवृत्तिर
भावः यूर्वं भट्टाभावोऽविषयत्, स नेत्रानी सम्भवति, यदो हि स स्वप्नतियोगाभ्या-
नाभिकरणः, कथमिति चेच्छृणु योऽयं भट्टाभावः, पूर्वक्षणावृत्तिविविधः पर्वते
तस्यैव घटाभावम्य उत्तरक्षणे अभावोऽपि, इति उत्तरक्षणावच्छेदेन पूर्वक्षणावृत्तिव-
विशिष्टघटाभावाभ्यः विशिष्टं शुद्धालानितियने इति रोला शुद्धाभावाभावः विशिष्ट-
घटाभावत्वः । इति यथा घटाभावस्य प्रतियोगी घटः तथा घटाभावस्य घटा-
भावाभावाभावस्वरूपतया तप्तियोगी घटाभावाभावो द्विनीयाभावश्च, इति घटरूप-
प्रतियोगिनोऽवत्तेऽपि यदेवे पूर्वक्षणावृत्तिविशिष्टघटाभावाभावस्वप्रतियोगिस्त्वेन
घटाभावस्य प्रतियोगित्यविकरणत्वाभावात् । एव येवा सर्वस्यारि अभावस्य
प्रतियोगित्यविकरणता नैव स्थादिति स्वाक्षराभ्यः ।

* सरस्वती *

यद्वा मानने पर कपिसंयोगी “इस रुद्देतुत्यत्र” मे अवश्याति बलो ही रह
जायगी क्योंकि कपिसंयोगाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न वृक्ष ने अदृति कपि-
संयोग भी होगा, उक्ता अनपिकरण वृक्ष होगा ही, साध्याभाव पक्षहु लिया
जायगा ।

॥ न्यायसिद्धान्तमुच्चावली ॥

द्वितीये तु प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिः सर्वस्यैवामावस्य पूर्व-
शृण्वृत्तित्वविशिष्टस्याभावात्मकप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात् । अत
चहिमान् ॑ धूमादित्यादी घटाभावादेः पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्याभावात्मक-
प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं यद्यपि पर्वतादेः, तथापि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन
तत्प्रतियोग्यनविकरणत्वमस्त्येवेति कथं प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धि-

• प्रभा •

न तु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनविकरणत्वविवक्षणस्थानुपदमुच्चलात्
पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्याभावामावस्यप्रतियोगिनः स्वस्यसम्बन्धेन पर्वते रात्मेऽपि
माध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धेन तथाभावात् घटाभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं
मुख्येन पव नात्मव इति चेद, अभावाविकरणकोऽभावोऽविकरणस्वस्य इति
केणादित् उद्दाहरेत घटाभावे यो बहुघमावः सोऽविकरणस्वस्यः अर्थात् घटा-
भावस्वस्य इति, यथा तस्य गदः प्रतियोगी तथा यद्विरपि, तदधिकरण च पर्वत
इति नात्मी घटाभावः प्रतियोगिव्यधिकरणो मवितुमईत्, एवमेवान्वेष्यमावा
इति घवेदसम्भवापाव इति तत्पर्यात् ।

न चाभावनिष्ठोऽभावो नामावस्यस्यः किञ्चु भिन्न एवेति मते नोक्तरीत्या
प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिरिति वाच्यम्, तथा सति धूमाभावान्, घटाभ-
भावाविति तदेती स्वस्यसम्बन्धेन धूमाभावसाध्ये बहुघमावदेतुके चाच्याति

• सरस्वती •

२—दूसरे में प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव ही अप्रसिद्ध हो जायेगा, क्योंकि
सभी अभाव पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्याभावात्मकप्रतियोगी के समानविकरण
होते हैं ।

प्रभ— यद्यपि 'नहिमान् धूमात्' इत्यादि में पकडा जानेवाला जो घटाभाव
वह पर्वत में प्रतियोगिव्यधिकरण नहीं होगा, क्योंकि पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्याभा-
वात्मकप्रतियोगी का अविकरण ही पर्वत हो जाता है, वथापि साध्यतावच्छेदक
सम्बन्ध से प्रतियोगी का अविकरण पर्वत हो जायगा । इव प्रकार प्रतियोगि-
व्यधिकरण अभाव ही प्रसिद्ध हो सकता है पुनः अप्रसिद्ध हैसे ।

४३ न्यायसिद्धान्तसुकावली ४३

रिति याच्यम्, घटाभावे यो बहुशमावात्मस्य घटाभावात्मकतया घटा-
भावस्य वहिरपि प्रतियोगी तदधिकरणं च पर्यतादिरित्येवंक्रमेण प्रतियो-
गिव्याधिकरणस्याप्रसिद्धत्वात् । यदि च घटाभावादी बहुशमावादिभिर्न
इत्युच्यते, तदापि धूमामावान् बहुशमावादिस्पादावव्याप्तिः—तत्र साध्य-
सावच्छेदकसम्बन्धः स्वरूपसम्बन्धः तेन सम्बन्धेन सर्वस्येवाभावाय पूर्व-
क्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यव्याधिकरणत्वं हेत्वविकरणस्येति ।

४४ प्रमा ४४

दोप्रथ्य दुर्वात्मात् । साप्यतावच्छेदकेन स्वरूपसम्बन्धेन अभावमावस्य पूर्वस्थ-
मृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यव्याधिकरणत्वेन प्रतियोगिव्याधिकरणत्वाभावात् ।

यद्यपि यद्यक्षिण्यर्थात्योगिगताकच्छेदकात्मिक्यानविकरणत्वं हेत्वविकरणस्यै
पक्षे घटाभावीयत्वलिङ्गित्यपतियोगिगताकच्छेदकवटत्वावच्छिदानविकरणत्वस्य पर्वते
सत्येन प्रतियोगिव्याधिकरणाभावप्रतिदिद्या समन्वये नासम्भवदान्तका । तथापि
आत्मा कर्षिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादीर्ति सद्देतौ* कर्षिसंयोगाभावसार्वके
आत्मत्वेत्तुकेऽभ्याप्तिः स्पाद, साध्याभावप्राप्तस्य प्राप्तिः । तथाहि—
साध्याभावः कर्षिसंयोगाभावाभावः कर्षिसंयोगरूपः, तत्र कर्षिदोगे

* सरत्यती *

उत्तर—अभावाधिकरणक अभाव अधिकरणस्वरूप होता है इस निष्पम से
घटाभाव में जो बहुशमाव वह घटाभावस्वरूप होगा, इस प्रकार घटायात्र का
प्रतियोगी वही भी हो जायगा, वह पर्वत में है ही, तुलः प्रतियोगिव्याधिकरण
आभाव की अप्रसिद्धि हागी रहेगी ।

प्रथम—घटाभाव आदि में रहनेवाला बहुशमाव आदि भिन्न ही होता है, अधि-
करणस्वरूप नहीं, ऐसा भी किसी छिसी का मत है, तर वो अप्रसिद्धि न होगी ।

उत्तर—वैसा प्राप्त ऐसे पर भी ‘धूमामावान् बहुश’* एस रण में
अभावस्थित भग जायगी । क्योंकि साप्यतावच्छेदक स्वरूपसम्बन्ध से सभी अभाव के
पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोगी का अधिकरण हेत्वविकरण हो
जायगा ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ५४

तृतीये तु क्षमिसंयोगभाववा॑न् आत्मत्वादित्यादावव्याप्ति ।—तत्रात्मा वृचिक्षपिसंयोगभावभाव क्षिप्तयोगस्तस्य गुणत्वात् सत्प्रतियोगितावच्छेदकं गुणसामान्याभावत्वमपि तदवच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्यात्मन इति ।

मैथम—यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेतुभरतस्यादृशप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य विवक्षितत्वात् ।

* प्रमा. *

क्षिप्तयोगत्वं गुणत्वं च चर्मी तिष्ठत । साध्याभावप्रतियोगितावच्छेदक क्षिप्तसंयोगभावत्वम् गुणसामान्याभावत्वं च । तत्र यत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकपदेन गुणसामान्याभावत्वमुण्डाय तदवच्छिन्नानधिकरणत्वमात्मन इति शास्यभावो गृहीत स्थात् प्रतियोगित्वधिकरण इति स्पष्टताहुपादाने याचाभावात् । इति कथम् प्रतियोगित्वधिकरणपरिभ्वा इति चिन्ताशामाह मैथमिति । यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्य तादृशप्रतियोगितावच्छेदक यत् साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्नप्रत्येकादि लक्षणम् । प्रहरे च यादृशप्रतियोगितावच्छेदकपदेन गुणसामान्याभावत्वम्, तदवच्छिन्नानधिकरणत्वमिति तदप्रतियोगितावच्छेदक यत् साध्यतावच्छेदक क्षिप्तयोगभावत्वं तदवच्छिन्नतामानापि कर्त्त्वक्षमतानिवार्हात् ।

* सर्वतो *

२—तीसरे फलमे ‘क्षिप्तयोगभावत्वान् आत्मत्वात्’ इस सद्बृत्ते में अन्यासि हो जायगो । क्योंकि आत्महृति क्षिप्तयोगभावभाव है क्षिप्तयोगस्वरूप, यह गुण है, अतः प्रतियोगितावच्छेदक गुणसामान्याभावत्वे भी होगा, तदवच्छिन्न का अधिकरण हेत्वधिकरण आमा नहीं ।

विशिष्टसमाधान—यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का अनधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृशप्रतियोगिता का अनश्चेदक साध्यतावच्छेदक प्रेषा अर्थ करने से सभी दोष इट जायेंगे ।

५३ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ५३

- ननु कालो घटवान् कालपरिमाणादित्यश्च प्रतियोगिन्यधिकरणाभावा-
प्रसिद्धि:-—क्षेत्रविधिकरणस्य महाकालस्य जगदाधारतया सर्वेषामेवाभावानां
साध्यवावच्छेदकसम्बन्धेन कालिकविशेषणदया प्रतियोगिन्यधिकरणत्वात् ।

अत्र वेचित्—महाकालभेदविशिष्टघटाभावस्त्र प्रतियोगिन्यधिक-
रणः, महाकालस्य पटाघारचेऽपि महाकालभेदविशिष्टघटानाधारस्त्वात्,
महाकाले महाकालभेदाभावात् ।

* प्रमा *

ननु कालः घटवान् कालपरिमाणात् इति कालपरिमाणेन घट-
साप्यके कालपरिमाणदेशुके रुद्धेत्री प्रतियोगिन्यधिकरणाभावाप्रसिद्धया अव्याप्तिः
स्यात्, तथाऽपि कालपरिमाणस्य ऐतोः अधिकरणम् महाकालः, सब अगतामाभय
इति सर्वसिद्धान्तात् सर्वस्थाप्यभावस्य प्रतियोगी कालिकसम्बन्धेन साध्यवावच्छेदकेन
तत्र महाकाले वर्तते इति न कोऽप्यमाशः प्रतियोगिन्यधिकरणतया लक्ष्य शक्यः
स्यात् इति शब्दायामाह “अत्र कोचिद्दिवि” । अप्यमाशः यदा दूषले वद्धे वर्तते
तत्रैव स्वस्मेण महाकालभेदविशिष्टो भवति, तस्य च महाकालभेदविशिष्टस्य पठस्य
अभावो महाकाले लक्ष्यते, इति स भविष्यन्ति प्रतियोगिन्यधिकरण, महाकाल-
भेदविशिष्टघटाभावीया प्रतियोगिता महाकालभेदविशिष्टपैदनिशा, प्रतिपोगिता-
चच्छेदकम् महाकालभेदविशिष्टपैदनिशम्, तदनश्चेदक शुद्धसाध्यवावच्छेदक पैदस्यं,
तदवच्छिद्यसामानाधिकरण्य कालपरिमाणदेशोरिति दोग्याभावात् तदाह महाकाल-
स्येत्यादिना ।

* सरस्वती *

प्रभ—‘कालो पठवान्’ इस रुद्धेत्रुपयत्र में अव्याप्ति हो जायगी; इयोकि देवुडा
धिकरण जो महाकाल यह समस्तजगत् का आधार है, उस में साध्यवावच्छेदक
कालिकसम्बन्ध से सभी अभाव प्रतियोगितमानाधिकरण हो जायेगे ।

उच्च—महाकालभेदविशिष्ट पठाग्नेव ही प्रतियोगिन्यधिकरण अभाव प्रसिद्ध
हो जायगा। इयोकि महाकाल में महाकालभेदविशिष्ट घट कदारि नहीं रह सकता ।

४३ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४३

धातुवत्तु प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनिषिकरणीभूत-
हेत्यधिकरणवृत्त्यमावप्रतियोगितासामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्यद्वर्माव-
च्छिन्नत्वोभयामावस्तेन सम्बन्धेन तद्वर्मावच्छिन्नत्य चक्षेतुव्यापकत्वं

* प्रथा *

तावता निवेशप्रवेशकल्पनाउकृतेन शास्त्रार्थेन मनो न विभाग्यनि चेत्
सिद्धान्तमाव घरतुतस्त्विति । यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व-पदमावच्छिन्नत्वोभयामावपै
यत्सम्बन्धयद्वर्मपदाभ्यां साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध-साध्यतावच्छेदकवर्मां विवक्षितो ।
सम्बन्धप्रथमं पर्वतो यहिमान् धूमादिव्यज सयोगेन घटामावः रहत्वे, तद
प्रतियोगिता घटनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदः सम्बन्धः सयोगः, तेन
प्रतियोग्यनिषिकरणीभूतहेत्यधिकरणवर्तत्वमाव (पदाभ्याव) प्रतियोगितासामान्ये
साध्यतावच्छेदकसयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-साध्यतावच्छेदकपदमावच्छिन्नत्वोभया-
भावः (संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्वेऽपि वहित्वावच्छिन्नत्वं नास्ति हति एकसत्त्वेऽपि
द्वय नात्तिह इति रीत्या सिद्धयति, तनोभयामावः प्रतियोगितासम्) तेन सम्बन्धेन
(सयोगसम्बन्धेन) तद्वर्मावच्छिन्नत्वं (साध्यतावच्छेदकवच्छिन्नप्रथम वहित्वावच्छिन्न
त्वस्य) वद्देः तद् (धूम) ऐत्यापकत्वमिति तदसामानाधिकरण्य धूमेवोब्यासिः ।

कालेष्टद्वानित्यष्ट च कालपरिमाणहेत्यधिकरणे महाकले सयोगेन घटा-
भावो ग्राह्यः । तथा च प्रतियोगितावच्छेदवेन सयोगसम्बन्धेन घटामावप्रतियोग्य-
निषिकरणीभूतहेत्यधिकरणमहाकालवृचिसयोगसम्बन्धावच्छिन्नपदाभ्यावीष्यप्रतियोगि-
तासामान्ये साध्यतावच्छेदककाळिकाप्रथमपदाभ्यावच्छिन्नत्व-साध्यतावच्छेदकघटत्वा
वच्छिन्नत्वोभयामावः (घटत्वावच्छिन्नत्वसत्त्वेऽपि सयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्वा काळि-
कालप्रथमपदाभ्यावच्छिन्नत्वविरद्गमुक्तः) तेन सम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकालयेन काळिक-

* सरसवी *

यत्कुतः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से प्रतियोगी का अनिषिकरणीभूत जो
हेत्यधिकरण, उस में रहनेवाला जो अभाव उसके प्रतियोगितासामान्य में साध्य-
तावच्छेदकसम्बन्ध)वच्छिन्नत्वं तथा साध्यतावच्छेदकपदमावच्छिन्नत्वं उभय का

चोद्यम् । व्यापकसामानाधिकरण्य च व्याप्तिः । यत्सम्बन्धं साध्यता-
यच्छेदकसम्बन्धं, यद्यर्म साध्यतावच्छेदकर्म । तत्र यदि यद्यर्मावच्छेद-
भावाभावमात्रमित्युच्यते तदा समवायेन यो व्युषभावस्तस्य प्रतियोगि-
तावच्छेदकसम्बन्धं समवायस्तेन प्रतियोग्यधिकरणपर्वतादिवृत्तिः स एव,
तत्रत्योगितावच्छेदक वहित्यमित्यव्याप्तिः रथात् । यदि च यत्सम्बन्धा-
वच्छेदभावाभावमात्रमित्युच्यते तदा तादृशस्य सयोगेन घटाभावस्य
प्रतियोगिताया सयोगसम्बन्धावच्छेदत्यस्त्वादव्याप्तिः स्यादत् उभय-
सुपाचम् ।

* प्रमा *

सम्बन्धेन तद् (साध्यतावच्छेदकस्तथा) यमांतच्छिन्नो षट्, तद् (कालपरिमाण)
देतुव्यापक तत्सामान्यधिकरण्य हेतो कालपरिमाणस्येति न दोषः । उभयाभाव
प्रविष्टयो पद्महत्यमाह मूले तत्र यदीति । अयमावाय, तादृशपति गोगितासामान्ये
यद्यर्मावच्छेदत्वाभावमात्रोपादाने यस्मिन्बन्धावच्छेदत्वाभावातुपादाने च पर्यंतो
वहिमान् धूमादित्यनैव रथादव्याप्तिः, तथाहि समवायेन वद्यभाव पर्वते प्रहीष्यते,
तप्र प्रतियोगितावच्छेदकस्तथा समवाय, तेन प्रतियोगिव्युषधिकरणपर्वतादि-
त्तुति स एव (अमाव) तत्पत्योगिता वही, प्रतियोगितावच्छेदक वहित्यं,
तदेव साध्यतावच्छेदकमिति । अतः यत्सम्बन्धावच्छेदत्वाभावोऽप्युपादीयते । सति
स्तिमन् यद्यर्म (साध्यतावच्छेदक) तदवच्छेदत्वैऽपि यस्मिन्बन्ध (साध्यता-
वच्छेदकस्योगसम्बन्ध) तदवच्छेदत्वाभावात् प्रतियोगितासामान्य उभय-
भावस्तेन निर्वादात् ।

यदि च तप्र प्रतियोगितायाम् यत्सम्बन्धावच्छेदत्वाभावमात्रसुपादीयते न
यद्यर्मावच्छेदत्वाभावोऽप्तीति, तदा पवर्तो वहिमान् इत्यैव स्यादव्याप्तिः,
सयोगेन वद्यभावस्य प्रतियोगितायां यस्मिन्बन्ध (साध्यतावच्छेदक सयोग)

* सरस्वती *

अमाव हो उस साध्यतावच्छेदकस्तथा से त साध्यतावच्छेदः यद्यर्मावच्छेद साध्य
को तदेतु का व्यापक होना चाहिए, ऐसा अक्षण कर देने से सभी दोनों का
उद्याह हो जायगा ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४

इत्यं च कालो घटधान् कालपरिमाणादित्यादी सयोगसम्बन्धेन घटा-
भावप्रतियोगिनोऽपि घटस्यानधिकरणे हेत्यधिकरणे महान्ठाले वर्तमानः
स एव सयोगेन घटाभावः, तस्य प्रतियोगिताया कालिकसम्बन्धावच्छिन्न-
त्वं घटत्वावच्छिन्नत्वोभयाभावसर्वान्नाश्यामि ।

ननु प्रमेयवहिमान् धूमादित्यादी प्रमेयवहित्वावच्छिन्नत्वमप्रसिद्धं
गुरुधर्मस्यान्तवच्छेदक्षत्वादिति चेदून,

कम्मुमीवादिमान्नास्तीति प्रदोत्या कम्मुमीवादिमत्वावच्छिन्नप्रतियोगि-
वाचिपर्याकरणेन गुरुधर्मस्याप्यवच्छेदक्षत्वस्वीकारादिति सद्ख्येप ॥६९॥

* प्रमा *

तदवच्छिन्नत्वादिति यद्मावच्छिन्नत्वाभावोऽप्युपादीषते ।

नन्देवत्थपि 'सभवति लघी पर्मे गुरो लदभावात्' इति लिङ्गातेन नैयायिक-
सम्भेन लघुवर्मस्यैष अवच्छेदक्षत्वं न गुरुधर्मस्येति रीत्या प्रमेयवहिमान् धूमात्
इति सदेहो धूमाधिकरणपर्वतृत्यभावप्रतियोगितासामान्ये यत् (साप्ततावच्छेदक-
प्रमेयवहित्व) धर्मविच्छिन्नत्वम् अप्रसिद्धमिति कथमपि लक्षणसमन्वयो न स्थादिति
चेदपाद फल्मुमीवादीति । अयमाशय, कम्मुमीवादिमान् घट, यथा घटो
नास्तीत्यभाव अध्यते तथा कम्मुमीवादिमान् नास्तीत्यपि प्रतीषते, तत्र प्रतीतिवलेन
प्रतियोगितायाम् कम्मुमीवादिमत्वावच्छिन्नत्वम् मन्यते । तथाच प्रतियोगितापच्छेदक-

* सरस्वती *

इति प्रकार 'कालो वर्णवान्' यहो पर सयोगसम्बन्ध से घटाभावप्रतियोगो घट
के अधिकरण महान्ठाल में सयोगसम्बन्ध से वर्तमान वही वर्णवाव, उसको
प्रतियोगिता में कालिकसम्बन्धावच्छिन्नत्वं घटत्वावच्छिन्नत्वं उभय फा अमाव रहने
से अव्याप्ति न होनी ।

प्रश्न—प्रमेयवहिमान् धूमात् इति सदेवत्थपल में गुरुधर्मं प्रमेयवहित्वं की
अवच्छेदक्षता अमान्य होने से अप्रसिद्धश्य अव्याप्ति हो जायगी ।

ठसर—कम्मुमीवादिमान् नास्ति इत्यादि प्रतीति से गुरुधर्मं भी प्रतियोगिता
का अवच्छेदक मान लिया जाता है ।

झ कारिकाबली झ
सिपाधविषया शून्या सिद्धिर्यंत्र न विद्यते ।
स पष्ठस्तत्र पृच्छित्वज्ञानादलुमितिभवेत् ॥ ७० ॥

झ न्यायसिद्धान्तमुकावली झ

पशुबृहत्त्वमित्यत्र पश्चत्व कि तदाह-सिपाधविषयेति । सिपाध-
विषयादिरहविशिष्टसिद्ध्यमावः पश्चता, तद्वान्पक्ष इत्यर्थः ।

* प्रमा *

कम्बुजोगादिगत्वा यान्यमेव । अतएव अनन्देदकलनिश्चिभये 'पतीतिवलाद्-
गुरुर्पि घर्मोऽवच्छेदकः प्रतिषेगितायाः' इति स्पष्टमुक्तम् । तथाव प्रहृते प्रमेय-
वद्वित्वमपि प्रतियोगितावच्छेदकं सहृतमिति न प्रमेयवद्वित्वावन्विद्युत्वाप्रसिद्धया
अव्याहितिरिति सद्वेषः ॥ ६६ ॥

पश्चता निरूपयते सिपाधविषया शून्या सिद्धिः न
विद्यते स पश्चः, तत्र पृच्छित्वज्ञानात् अनुमितिः भवेदिति साप्तग् । साप्तगित्वमित्याप्ता
सिपाधविषया तथा शून्या या सिद्धिः सा यत्र न विद्यते स पश्चः । उक्तं निर्वक्ति
सिपाधविषयेति । सिपाधविषया यो विरहः (अभावः) तेन विशिष्टा (सवलिङ्गा)
या सिद्धिः तस्या अभावः पश्चता तद्वान् (पश्चतावान्) एव इति तदर्थः । अव्याध-
मप्रियनिच्चिः, सिद्धि = निर्दयः, प्रत्यक्षादिसंरक्षतः । यथ एवंतो वद्विमान् इति
प्रत्यष्ठेण निर्धयो जाताः तत्र सिद्धिः (निर्धयः प्रत्यक्षात्मकः) एवंते इति तत्र
अनुमितिर्न मवति । यदि सत्यपि प्रत्यक्षनिर्धये वस्पचित् इच्छा (सिपाधविषया)
मवेत् पर्वते वहयनुमितिमें जायताम् इति, तदा प्रत्यक्षादिनिर्धयसम्बोधपि भवेदेव-
यानुमितिः, यतो हि प्रत्यक्षादिनिर्धयः प्रतिशब्दको न मविद्युमर्हति, तपा हि
सिपाधविषयादिरहविशिष्टा सिद्धिः प्रतिवनिधिका भवति, एवन्तु सिपाधविषयाविशिष्टैत
आतेनि प्रतिवन्दशमप्ये नादित इति ।

* सरस्वती *

पशुबृहिल में पश्चता बया है । अतः दसका निरूपण करते हैं—

साप्तग करने को जो इच्छा, उसका जो अभाव, उस से विशिष्ट जो सिद्धि,
उस के अभाव को पश्चता कहते हैं । यह जिस में रहे उसका नाम पश्च दीता है ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४०

काले परामर्शनाशास्त्रानुमिति:, यत्र सिद्धिपरामर्शसिपाधयिषः क्रमेण
मवन्ति तत्र सिपाधयिषाकाले सिद्धेनाशास्त्रविवन्धकाभावादेवानुमिति:,
यत्र सिपाधयिषासिद्धिपरामर्शाः सन्ति तत्र परामर्शकाले सिपाधयिषैव
नाति, एवमन्यथापि सिद्धिकाले परामर्शकाले वा न सिपाधयिषा-योग्य-
विभुवशोपगुणानां योगपदानिषेषात्, तत्वं सिपाधयिषाविरहविशिष्टत्वं
सिद्धेविर्शेषणमिति चेद् न,

यत्र बहिष्याप्यधूमवान् पर्वतो बहिमानिति प्रत्यक्षं स्मरणं वा सकः

• प्रथा •

वन्यं शान रबोत्तरचितृतीष्वर्गेऽस्य नश्यति, एव एव वन्यशानस्वभावः, यत्र च
प्रथमस्ते परामर्शः, ततः तिदिः, ततः सिपाधयिषेति क्रमः, तत्र परामर्शस्य
सिपाधयिषात्ते नाशात् परामर्शरूपकारणामायात् अनुमितिर्वाच भवति । यत्र
प्रथमं तिदिः, ततः परामर्शः, ततः सिपाधयिषा, तत्र सिपाधयिषात्ते रवतुतीये
सिद्धेनाशात् प्रतिवन्धकाभावात् भवत्यनुमितिः । यत्र प्रथमं सिपाधयिषा, ततः
तिदिः, ततः परामर्शः, तत्र परामर्शकाले रवतुतीयात्ते सिपाधयिषैव नाति इति
प्रतिवन्धकस्वभावात् नैवानुमितिः । इति गीत्या कार्यनिवाहे विपाधयिषाविरह-
विशिष्टत्वं सिद्धेविरेण्यं कथमङ्गाक्षियत इति प्रथा ।

प्रयोजनमाह यद्येति । प्रत्यक्षगिति । अनुमितीष्वाप्नवादिष्यते 'बहि-

• सरस्वती •

शूण में परामर्शनाश हो जाने से अनुमिति नहीं । जहाँ सिदि परामर्श सिपाध-
यिषा क्रम से होती है, वहाँ सिपाधयिषात्ते में सिदि के नाश हो जाने से प्रति-
वन्धक न रहने के कारण अनुमिति हो जाती है । जहाँ सिपाधयिषा सिदि तथा
परामर्श रहे वहाँ परामर्शकाल में सिपाधयिषा ही नहीं । इसी प्रकार अन्यत्र भी
सिद्धिकाल में, परामर्शकाल में सिपाधयिषा न रहेगी, ऐसोहि दोषविभुवदोषरुणो
वा एक समय में रहना नहीं होता । मुनः सिपाधयिषाविरहविगिहलं सिदि का
विदोषम कैसे ।

उत्तर—जहाँ बहिष्याप्यधूमवान् पर्वतो बहिमान् पर प्राप्य अथवा स्मरण-

ॐ न्यायसिद्धान्वमुक्तावली ४३

सिपाधिया तत्र पक्षतासम्पत्तये तद्विशेषणस्यावश्यकत्वात् ।

अत्रेद वोच्यम् । यादशयाहसिपाधियास्त्वे सिद्धिस्त्वे थलिङ्ग-
कानुमितिसतादशतादशसिपाधियाविरहविशिष्टसिद्धयमावस्तरलिङ्गकानु-
मितीं पक्षता । तेन सिद्धिपरामर्शसन्त्वेऽपि यत्किञ्चिब्दान जायतामिती-

* प्रभा *

व्याप्तधूमवान् पर्वतं अनुमितिरित्याचनम् । इति समूद्रात्मनगत्यधे रात्रयम् ।
तादशविशेषणानुपादाने सिद्धिमात्रस्य प्रतिवर्भक्त्वे इह अनुमितिं स्यादित्यापि ।
अतो विशेषणमावश्यकताप्य सति सिपाधियिदाविरहविशिष्टा सिद्धि प्रतिविधिका,
न सिद्धिमात्रम्, सिपाधियिपामहत्वा च सिद्धिर्व प्रतिविधिरेति द्वदयम् ।

ननु यत्र सिद्धि परामर्शं, वत्र 'यत्किञ्चित् शान जायताम्' इत्याकारके
च्छया इच्छानिरहनितिष्ठितदयपत्वेन कुतो नानुमितिरिति वेदशाह अत्रेदे
वोच्यमिति । तथा च यादशसिपाधियास्त्वे सिद्धिस्त्वे यद्यदुकानुमिति प्रामा-
णिकी तादशताद्यासिपाधियाविरहविशिष्टसिद्धोपाच तद्यदुकानुमिती वरणभूता
पक्षतेति, ननु या कामयि इच्छामादाय पद्मताल्पुण बलाद्येतु शक्यत इति न
दोष । सिपाधियिपाया आकारन्तु एतत्प्रश्नक एतत्साध्यक एतद्यदुकानुमितिमें जाय-
तामित्यादि । अथ अनुमितिव्यम् प्रकार, अनुमितिव्यप्रकारिका च सिपाधिया ।
अनुमितिव्यप्रकारक्षम्युपक्षणम्, अत एव वहिव्याप्तधूमवान् पर्वतो विद्यमानिति
प्रत्यवसरत्वे 'प्रत्यक्षातिरिच्च' शान मे जायतामिति प्रत्यक्षातिरिच्चत्वप्रकारक
सिपाधियिपासवेऽप्यनुमितेरिष्टत्वम् । यज्ञिङ्गक परामर्शं तद्विज्ञाका छिपाधियिपैत्र

* सरस्वती *

हो उसके बाद हिषाधिया, वहाँ पर पहुँचा बनाने के लिये उस विदोषण का
स्माना आवश्यक है ।

यहो दह जानना अवश्यक है कि—वैशी वैसी सिपाधिया इते सिद्धि
रहते किस हेतु की अनुमिति होती हो वैशी वैसी सिपाधिया के अभाव से
विद्यिषु लो सिद्धि उस का अभाव उस देवताओं की अनुमिति में पड़ता हो ।

अह विदित्यानन्दं यहने पर भी 'मुहो दुद्ध शान हो' ऐसी इन्द्रा रहने पर

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॐ

च्छायामपि नानुभिति । वहिक्षाप्यधूमवान् पर्वतो वहिमानिति प्रत्यक्ष-
सत्त्वे प्रत्यक्षप्रतिरिक्तं हानं जायतामितीच्छायां तु भवत्येष । परं धूमपरा-
मर्शसत्त्वे आलोकेन वहिमानियामितीच्छायामपि नानुभितिः ।

सिपाधयिपाविरहकाले यादशसिद्धसत्त्वे नानुभितिस्त्राहशी सिद्धिर्वि-
शिष्येष तचदनुभिती प्रतियन्विका वक्ष्या, तेन पर्वतसत्त्वेऽस्त्री पापाण-
मयो वहिमानिति क्रानसत्त्वेऽप्यनुगमिते न विरोषः ।

• प्रमा •

दलिङ्गकानुभिती जनिकेति निवेशस्योऽस्त्वात् धूमलिङ्गकपरामर्शं—आलोकलिङ्गक
सिथापयिषयो सत्त्वे नानुभितिरिति दर्शयति एवमिति ।

तद्यमविच्छिन्नप्रकारतानिस्पितदद्मावच्छिन्नप्रविशेष्यताशाबिनिश्चयः । उडम्भा-
वच्छिन्नप्रकारतानिस्पितदद्मावच्छिन्नप्रविशेष्यताशाहयनुभिती प्रतिबन्धको नान्या
दृशः, यथाह वहिलावच्छिन्नप्रकारतानिस्पितपर्वततावच्छिन्नप्रविशेष्यताशालिनिश्चयः
पर्वतो वहिमानिति प्रतिशादिः वहिलावच्छिन्नप्रकारतानिस्पितपर्वततावच्छिन्न-
प्रविशेष्यताशाहयनुभिती प्रतिबन्धक इत्याह विशिष्येवेति । तचदप्रकारविशेष्य
निवेशस्त्रिविक्षणस्य पलमाह तेनेति । वशाच तेजस्थावच्छिन्नप्रकारतानिस्पित-
पर्वततावच्छिन्नप्रविशेष्यताशादिः—वहिलावच्छिन्नप्रकारतानिस्पितपापाणमयताशच्छिन्न-
प्रविशेष्यताशालिनिश्चयो वा न पर्वतो वहिमान् इत्यनुभिति प्रतिबन्धु एकत्रयात् ।

इदमनुसन्वेष्यम्, अनुभितिर्द्विधा मवति, एका पद्मवर्णेदकावच्छेदेन, अप-

• गरस्त्रती •

भी अनुभिति नहीं होती । वहिलाप्यधूमवान् पर्वतः वहिमान् इस प्रत्यक्ष के
रहते 'मुझे प्रत्यक्षप्रतिरिक्त शान हो जाय' ऐसी इच्छा रहने पर अनुभिति
होती ही है ।

इसी प्रकार धूमपरामर्श रहते आलोकदेख इच्छा से अनुभिति नहीं होती ।
सिपाधयिपा के अभावश्च में ऐसी सिद्धि रहते अनुभिति नहीं होती ऐसी सिद्धि
विशेषरूप से उन उन अनुभितियों में प्रतिबन्धक छहनी चाहिये । अतः पर्वत-
सत्त्वेऽस्त्री...ऐसा शान रहने पर मी अनुभिति होही जाती है ।

ॐ न्यायसिद्धान्वमुक्तावली ॥

परंतु पश्चतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धावर्ति तदवच्छेदेनानुमितिवद्शेनात्पश्चतावच्छेदकावच्छेदेनानुमिति प्रति पश्चतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धिरेव प्रतिष्ठनिधिका । पश्चतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमिति प्रति तु सिद्धिमात्रे विरोधि ।

इदं तु वोग्यम् । यत्रायं पुरुषो न वेति संशयानन्तरं पुरुषत्वव्याप्त्यकरणिमानयमिति शानं तत्रासत्यामनुमित्सायां पुरुषत्वं प्रत्यक्षं भवति

* प्रभा *

रा पश्चतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन । यथा पर्यंतो वहिमान् धूमात् इत्यत्र पश्चः पर्यंतः, पश्चात् पर्यंतमिता, पश्चतावा अवच्छेदम् पर्यंतत्वम्, इति पर्यंतत्वावच्छेदेन अर्थात् सर्वत्र पर्यंते वहुप्रत्युमितिः । पर्यंतत्वासामानाधिकरण्येन अर्थात् पर्यंतत्वा-प्रिक्षये क्वचन पर्यंते प्रहृष्टप्रत्युमितिः । अनयोः शुश्र साध्यसिद्धिः प्रतिबन्धका शुश्र च नैति प्रश्न व्याह परनिल्वति । अर्थात् पश्चतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमित्यम् प्रति पश्चतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धिः प्रतिष्ठनिधिः, पश्चतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितिग् प्रति तु पश्चतावच्छेदकावच्छेदेन पश्चतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन च साध्यसिद्धिः प्रतिष्ठनिधिरेति निर्णयः ।

स्याणुर्वा पुरुषो वेति सदायामन्तरयम् पुरुषत्वव्याप्त्यहतपादादिमानयम् इति यत्र शाने तत्र यदि अनुमितीच्छा नाश्वित वदा पुरुषत्वं प्रत्यक्षम् भवति, अनुमितीच्छाया सत्यान्तु प्रत्यक्षम् वदाय अनुमितिरेति दशायाम् अनुमितीच्छा अपि रुचेऽजकाऽनुभूयते । हया च अनुमित्सा (अनुमितीच्छा) विरहिष्यिष्यसमान-

* सरखबी *

परेन्मु पश्चतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धि रहने पर भी पश्चतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमिति होती है, अतः अवच्छेदावच्छेदेन अनुमिति के प्रति अवच्छेदावच्छेदेन सिद्धि को प्रतिष्ठनिधिता, सामानाधिकरण्येन अनुमिति के प्रति हो देनो प्रकार की लिदियाँ विरोधिनी होती हैं ।

दिशेषः—जहाँ पर स्थानु है या पुरुष ऐसा संशय होने के बाद ‘पुरुषत्वव्याप्त्य करणिकाला दह’ ऐसा शान हो जाए यहाँ पर निराशरिता न रहने पर

के कारिकावली के

अनैकान्तो विस्त्रयाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।

कालात्ययापदित्यथ हेत्वामासास्तु पश्चादा ॥७१॥

न्यायसिद्धान्वमुक्तावली के

न त्वनुमिविरतोऽनुमित्साविरहविशिष्टसमानविषयकप्रत्यक्षसामग्री कामि-
नीजिज्ञासादिवत्वात्तन्येण प्रतिबन्धिका ।

एव परामर्शान्वत्तर विना प्रत्यक्षेन्द्रिय पश्चादे प्रत्यक्षानुत्पत्ते, प्रत्यक्षे-
न्द्रियविरहविशिष्टानुमित्सामग्री मित्रविषयकप्रत्यक्षे प्रतिबन्धिका ॥७०॥

देतुप्रसङ्गाद्वेत्यामासान्विभजते—अनैकान्त इति ।

* प्रमा *

विषयकप्रत्यक्षसामग्री मित्रविषयात्पत्तनुमिति स्वाक्षर्येण । स्वतन्त्रप्रतिबन्धकताया
निर्दर्शनमाह कामिनीति । अर्थात् का कामिनी इति कामिनीज्ञासा (शानेन्द्रिय)
यदा यस्य प्राणिनो भवति तथा तत्य अन्यत् शानपाप न भवति, इत्यनुभवणायः
कामिनीज्ञासा स्वाक्षर्येण शानपापतिविधेति सिद्धान्त ।

प्रसङ्गात् अपरस्मि प्रतिबन्धप्रतिबन्धकमावसाह एवमपि । परामर्शान्वत्तरम्
अनुमित्संवत्ति न प्रत्यक्षम् । परन्तु प्रत्यक्ष मे जायतामिति यदा परामर्शान्वत्तरम्
प्रत्यक्षेन्द्रिय तदा प्रत्यक्षमेव नानुमितिरिति प्रत्यक्षेन्द्रिय उत्तेजिका । तथाच प्रत्यक्षे-
न्द्रियविरहविशिष्टानुमित्सामग्री मित्रविषयकप्रत्यक्षम् प्रतिबन्धातीति कार्यकारण-
भाष्योऽपि ॥ ७० ॥

प्रसङ्गसङ्कल्प देत्वामात्रात् निरूपयति अनैकान्त इति । अनैकान्त, विद्धः

* सरस्वती *

शुश्र का प्रत्यक्ष होता है न कि अनुमिति । अत शामिनीज्ञासा को तरह
अनुमितीन्द्रिय के विरह से विशिष्ट ओ समानविषयक प्रत्यक्षसामग्री वह स्वतन्त्रस्वयं
से प्रतिबन्धक होती है ।

इसी प्रकार परामर्श के बाद विना प्रत्यक्ष की इन्द्रिय के पश्च आदि का
प्रत्यक्ष न होने से प्रत्यक्ष की इन्द्रिय का जो अमाव उत्तर से विशिष्ट ओ अनुमिति
की सामग्री वह भिरविषयक की प्रतिबन्धिका होती है । देतु के प्रसङ्ग से देवामास

क्षेत्र न्यायसिद्धान्वयुक्तावली क्षे

चलक्षणं तु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वम् । तथाहि-व्यभिचारादिविषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वाचे दोषाः । यद्विषयकत्वं च चारशविशिष्टविषयकत्वम्, तेन बाधभ्रमस्यानुमिति-विरोधित्वेऽपि न क्षतिः । तत्र पर्यन्तो बहुप्रभाववानिति विभिन्नत्वान्व हेतुदोषः ।

* प्रभा *

ए अपि असिद्धः प्रतिपक्षितः, काण्डात्यवापदिष्टः च हेत्वाभासाः तु पद्धता । हेतुवत् आभासत्वे इति हेत्वाभासाः अहेतुवो दुष्कृतवो वा । हेतोः आभासाः इति पश्चीतत्पुरुषसमाप्ते इति हेतुनिष्ठा आभासा दोषा इति यावत् । तथा च हेत्वाभासा इत्यस्य हेतुदोषा इत्यर्थः । दोषलक्षणमाह सल्लक्षणस्मिवति । यः विषयो यस्य हृद् यद्विषयकं सत्यं भावो यद्विषयकत्वम् तेन यद्विषयकत्वेन । शृणीषा विम-क्षेरर्थः अवस्थित्वत्तम्, शानस्य इति पश्चात् विष्टुतमप्तं, विष्टुतदि इति विरोधि (प्रतिवन्धकम्) अनुमितिः विरोधि अनुमितिविरोधि तत्य भावः अनुमितिविरोधित्वम् । तथाच यद्विषयकत्वावभिष्ठाणा शाननिष्ठा अनुमितिप्रतिवन्धकता सत्त्वं ऐत्याभासत्वमिति लक्षणम् । यथा हृदो बहुप्रभाव इत्यनुमितिनैः भवति तत्र बहुप्रभाववान् हृद इति बाधदोषस्त्वत् प्रतिवन्धात् । तथाहि बहुप्रभाववद्भवदिविषयकत्वेन शानस्य बहुप्रभाववान् हृद इत्याकारक्य बहुप्रभाव इत्यनुमितिनिष्टपतिं बप्तवानिष्ठिता प्रतिवन्धकता तत्त्वं बहुप्रभाववान् हृद इति दोषे इति समन्वयः । स्वयमाह तथाहीति । हे = व्यभिचारायदयः ।

* सरस्वती *

का विभाग करते हैं अनेकान्त इत्यादि । हेत्वाभास का वो यद्विषयकत्वेन शान जो अनुमितिप्रतिवन्धकता हो ताक ही क्षण है ।

थेहे—व्यभिचारादिविषयकत्व से शान को अनुमितिविरोधित्व होने से वे व्यभिचार आदि दोष दोंगे । यद्विषयकत्व भी पाद्यविशिष्टविषयकत्व इतना पाइये, अन्यथा ‘पर्यन्तो बहुप्रभावयान्’ इस बाधभ्रम से अनुमिति का धर्मन्ष दो जायगा । ऐसी विषया करने पर बहुप्रभावविषिष्ट वर्यत के अप्रतिष्ठ होने से

कारिकावली

अनैकान्तो विरुद्धयाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।
कालात्ययपदिष्ट इत्वामासास्तु पञ्चधा ॥०१॥

न्यायसिद्धान्तमुकावली

न त्वं तु मिति रत्नोऽनुमित्सा विरहविशिष्टसमानविषयक प्रत्यक्षसामग्री कामिनी जिज्ञासा दिवस्वातन्त्र्येण प्रतिवन्धिका ।

एवं परामर्शानन्तरं दिना प्रत्यक्षेच्छां पक्षादेः प्रत्यक्षानुत्तरेः, प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमित्सामग्री भिज्ञविषयक प्रत्यक्षे प्रतिवन्धिका ॥००॥
इतु प्रसङ्गाद्वेत्वा भासान्विभजते—अनैकान्त इति ।

* प्रमा *

विषयक प्रत्यक्षसामग्री प्रतिवन्धात्यनुभिति स्वातन्त्र्येण । स्वतन्त्रपतिवन्धकायां निदाहनमाह कामिनीति । अर्थात् का कामिनी इति कामिनीजिज्ञासा (शानेच्छा) यदा यस्य प्राणिनो भवति तदा तस्य अन्यत् शानमात्रं न भवति, इत्यनुभवगम्यः कामिनीजिज्ञासा स्वातन्त्र्येण शानमात्रपतिवन्धकेति सिद्धान्तः ।

प्रसङ्गात् अपरमपि प्रतिवन्धपतिवन्धकभावमाह एवमपि । परामर्शानन्तरम् अनुभितिर्भवति न प्रत्यक्षम् । परन्तु प्रत्यक्षं मे जायतामिति यदा परामर्शानन्तरम् प्रत्यक्षेच्छा उदा प्रत्यक्षमेव नानुभितिरिति प्रत्यक्षेच्छा उचेचिका । राधाच प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमित्सामग्री भिज्ञविषयक प्रत्यक्षसामग्री प्रतिवन्धातीति कामिकारण-भावोऽपि ॥००॥

प्रसङ्गसङ्गत्या इत्वामासाग् निस्पयति अनैकान्त इति । अनैकान्तः, विरुद्धः

* सरखती *

पुरुष का प्रत्यक्ष होता है न कि अनुभिति । अतः [कामिनीजिज्ञासा को तरह अनुभितीच्छा के विरह से विहिष्ट हो] समानविषयक प्रत्यक्षसामग्री वह स्वतन्त्ररूप से प्रतिक्रियक होती है ।

इसी प्रकार परामर्श के पाद दिना प्रत्यक्ष की इच्छा के पाद आदि का अस्तरा न होने से प्रत्यक्ष की इच्छा का जो अमाव उस से विशिष्ट जो अनुभिति की रामग्री वह भिज्ञविषयक की प्रतिवन्धिका होती है । ऐदु के प्रसङ्ग से इत्वामास

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४३

तल्लक्षणं तु यद्विषयकत्वेन शानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वम् ।
तथाहि-व्यभिचारादिविषयकत्वेन शानस्यानुमितिविरोधित्वाते दोषाः ।
यद्विषयकत्वं च यादृशविशिष्टविषयकत्वम्, तेन वाग्भ्रमस्यानुमिति-
विरोधित्वेऽपि न क्षतिः । तत्र पर्वतो वद्यमाववानिति विशि-
. इस्याऽसिद्धत्वान् हेतुदोषः ।

* प्रमा *

न अपि असिद्धः प्रतिपक्षितः, काण्डात्ययापदिष्टः च हेत्वाभासाः तु पक्षा ।
ऐतिकृत् आभासन्ते इति हेत्वाभासाः अदैतवो दुष्टदेतवो वा । देतोः आभासाः
इति पश्चेत्पूरुषसमात इति हेतुनिष्ठा आभासा देशा इति यावत् । तथा च हेत्वा-
भासा इत्यर्थ देतुदोषा इत्यर्थः । दोषलक्षणमाह तल्लक्षणनिवृति । यः विषयो
यस्य तद् यद्विषयकं तस्य मात्रो यद्विषयकत्वम् तेन यद्विषयकत्वेन । कुतीपा विभ-
क्तोर्यः अवच्छिन्नत्वम्, शानस्य इति पश्या निष्ठत्वमर्थः, विरुद्धदि इति विरोधि
(प्रतिवन्नवक्त्रः) अनुमितिः विरोधि अनुमितिविरोधि तस्य मात्रः अनुमितिविरो-
धित्वम् । तथाच यद्विषयकत्वात्क्षिण्डा शाननिष्ठा अनुमितिप्रतिवन्नवक्त्रा तत्त्वं
हेत्वाभासत्वमिति लक्षणम् । यथा हदो वद्यमान् इत्यनुमितिन् मषति तत्र वद्यमा-
भाववान् हद इति वाग्दोषस्त्वात् प्रतिवन्नतात् । तथाहि वद्यमाववद्यप्रतिवय-
क्तेन शानस्य वद्यमाववान् हद इत्याकारकस्य वद्यमान् हद इत्यनुमितिनिष्ठप्रतिव-
पत्तानिरुपिता प्रतिवन्नवक्त्रा । तत्र वद्यमाववान् हद इति दोषे इति समन्वयः ।
स्वप्नमाह तथाहीति । से = व्यभिचारादयः ।

* सरस्वती *

का विमाण करते हैं अनैकान्त इत्यादि । हेत्वाभास का तो यद्विषयकत्वेन शान को
अनुमितिप्रतिवन्नवक्त्रा हो तस्य ही क्षण है ।

हेत्वे—व्यभिचारादिविषयकत्व से शान को अनुमितियोग्यत्व दोने से वे
व्यभिचार आदि दोष होते । यद्विषयकत्व भी यादृशविशिष्टविषयकत्व एहना
पाहिये, अन्यथा 'पर्वतो वद्यमाववान्' इस वाप्रभम से अनुमिति का शनिवन्ध हो
जायगा । ऐसी पिकड़ा करने पर वद्यमावविशिष्ट पर्वत के शशसिद्ध होने से

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४६

न च बहुधमावव्याप्यपाणमयत्वयानितिपरागर्द्धकाले बहिव्या-
प्यथूमस्याभासत्वं न स्यात्तत्र बहुधमावव्याप्यवान्पश्च इति विशिष्टस्या-
प्रसिद्धत्वादिति वाच्यम्,

इष्टापत्तेः, अन्यथा वाघस्याप्यनित्यदोपत्वापत्तेः। रात्रात्तत्र बहुध-
भावव्याप्यपाणमयत्वयानितिपरामर्शकाले बहिव्याप्यथूमस्य नाभा-

● प्रपा ●

ननु एवम् पर्वतो बहिमान् इत्यप्यनुमितिर्न स्यात् तत्र पर्वतो बहून्यमाव-
वानिति भ्रमात्मकवत्वस्य सत्त्वेन प्रतिबन्धात्। तथाहि यद्विषयकस्याच्छुत्त्वेन
(बहून्यमाववत्ववृत्तविषयकल्पावच्छुत्त्वेन) शानस्य बहुधमाववान् पर्वत इत्यस्य
बहिमान् पर्वत इति शाननिष्ठप्रतिवप्यतानिस्त्रिपतिप्रतिवन्धकता सत्वं तादृशाभ्ये
इति चेत्, यद्विषयकल्पं यादृशविद्विष्टप्रतिवप्यकल्पम् भर्त्यात् यद्विषयक्षुन्नपिषय-
कल्पम्, तथाच यद्विषयक्षुन्नपिषयकल्पावच्छुत्त्वानिष्ठप्रतिवन्धकतेत्यादिलिखणेन
यत् (बहुधमाववत्ववृत्तत्व) स्वायाच्छुत्त्वेतिवक्तव्ये प्रकृते बहुधमाववत्वत्वाव-
च्छुत्त्वान्वयसिद्धया अनुभिरिषिष्ठप्रिष्ठिरात्। तदाह मूले पर्वतो बहून्यमाववानिति
विशिष्टस्याप्रसिद्धत्वादिति ।

नन्वेवम् बहिव्याप्यथूमवान् पर्वतः इति परामर्शकाले बहून्यमावव्याप्यपाणम-
यत्वलवान् पर्वत इति विरोधिषयगम्यासत्वे धूमस्य ऐतोः सत्प्रतिपद्धता न स्यात्
बहुधमावव्याप्यपाणमयत्ववत्ववृत्तस्यविषयप्रसिद्धिरिति (विशिष्टस्याप्रसिद्धेरिति
वावत्) शङ्काप्रिष्ठापत्त्या समाधत्ते इष्टापत्तेरिति । तत्र धूमस्य सत्प्रतिपद्धता
नैवेष्टेति मावः । अन्यथा = तादृशस्यले बहिव्याप्यथूमस्य सत्प्रतिपद्धते ।
चापस्यापि अनित्यदोक्षत्वं स्यादिति मावः । ननु तत्रानुमितिप्रतिवन्धः पतीयते क्यं

● सरत्वती ●

दोष नहीं हुआ ।

प्रश्न—बहुधमावव्याप्य पाणमयत्व वाला ऐसा परामर्श रहते बहिव्याप्य-
थूम को देख्यामासत्व नहीं होगा ।

उत्तर—यह आपत्ति इष्ट है, अन्यथा वाषको मी अनित्यदोपता हो जायगे ।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के
सत्यम्, भ्रमादनुभितिप्रतिबन्धमात्रं हेतुनु न दुष्टः ।

इत्यं च साध्याभाववद्वृत्तिहेत्वादिक दोषः । तदृत्यं च हेतौ येन
केनापि सम्बन्धेनेति नव्याः ।

परे तु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुभितिविरोधित्यं तदृत्यं हेत्वाभा-
सत्यम्, सत्यतिपक्षे विरोधिव्याप्त्यादिकमेव तथा, तदृत्यं च हेतोर्कान्त-
रूपसम्बन्धेन । न चैव वहिमान् धूमादित्यादी पक्षे याध्यमस्य साध्या-
भावविषयकत्वेनानुभितिविरोधित्वाऽज्ञानरूपसम्बन्धेन तदृत्यस्यापि
सत्त्वात्सद्वेतोरपि वाधितत्वापचित्तिवि वाच्यम्, तत्र ज्ञानस्य सम्बन्धत्वा-

* प्रभा *

स इति उमाशंकवाद भ्रमादिति । भ्रान्त्या अनुभितिप्रतिशन्य एव ननु हेतौ
दुष्टत्वमिति ।

ननु साध्याभाववद्वृत्तिहेतुर्व्यभिचारो दोषरेन हेतौ दुष्टत्वं कथ स्थादिति चेत्,
स्वज्ञानविषयप्रकृतदेवतापक्षेऽकत्वसम्बन्धेन हेतौ दुष्टस्यमहारानपनश्यतात् ।

ईत्यामासपर्दैन दुष्टहेतुर्व्यभिचारो दोषरेन हेतौ दुष्टत्वं कथ स्थादिति । ज्ञान-
स्थेति । स्वज्ञानविषयप्रकृतदेवतापक्षेऽकत्वसम्बन्धेनेति मात्रः । संदेहोऽपर्वतो
वहिमान् इत्यन यावद्यमाद् याधितत्यं निरर्थति तत्र ज्ञानस्थेति । यावद्यमे
याधित इति व्यवहाराप्रतीत्या वाच्यम् । सत्यतिप्रभ्रमे च रूपतिप्रदित इति
व्यवहारदादेव तत्वात्त्वीकारात् । एकत्र स्वीकार एकत्र चासीकार इति न
तर्कसम्मतमित्याहुरित्यनेनाख्यरसः गुचितः ।

* सरावती *

अतः पूर्वोत्तरत्यक्ष में हेतुको दोषता नहीं किन्तु अनुभिति या प्रतिपन्थमात्र होता है ।

अतः साध्याभाववाद् में ऐसी हेतु भावि दोष है, ये यिस किसी सम्बन्ध से
ख्य में रहे हो हेतु दुष्ट कहलायेगा ।

कोई कहते हैं कि यद्विषयस्त्वेन “यद दुष्ट हेतु या लक्षण है, दुष्टत्वत्व
ही हेत्वाभावत्व है । सत्यतिपक्ष में विरोधिव्याप्ति भावि ही ऐसे होते, तदृत्य हेतु में
ज्ञानरूप सम्बन्ध से । वहिमान् धूमाद् इस रूपड में यावद्यम में लक्षण नहीं

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षे

कर्त्तव्यमात्, अग्र सत्त्वतिपश्चित् इति व्यवहारेण सत्कर्त्तव्यमात्, तत्र वाचित् इति व्यवहाराभावादित्याहुः ।

अनुभितिविरोधित्वं च अनुभितितत्करणान्यतरविरोधित्वम् । तेन व्यभिचारिणि नाश्यमिति । दोषशानं च यद्देतुविषयकं तद्देतुकानुभिती प्रतिबन्धकम्, सेनैकहेतौ व्यभिचारशाने हेत्वन्तरेणानुभित्युत्पत्तेः, वदभावा- द्यनवगाहित्वाद् व्यभिचारशानस्यानुभितिविरोधित्वाभावेऽपि न क्षविरिति सद्भ्येषः ।

• प्रभा •

ननु अनुभितिविरोधित्वं साक्षाद् वापादेव व्यभिचारादिना तु साप्याभाव- यद्वचित्वादिरूपेण व्यस्तिशानप्रतिबन्ध एव क्रियते, कथ तत्रानुभितिविरोधित्वरूपं हेत्वाभासाद् सत्यटेतेति शब्दात्यामाद् अनुभितिविरोधित्वं चेति । अथम् भावः, कश्चित् साक्षादनुभितिविरोधी, कश्चित् अनुभितिकरणव्यातिशानविरोधीति परिष्कृते- नायेनानेन संवेदादस्मभावात् । पलमाद् सेनैक । व्योभचारीष = व्यभिचार- सद्भ्येषहेतौ इत्यर्थं । दोषशानस्य विशिष्य प्रतिबन्धकतामुपर्यापयति दोषेति । विशिष्य निवेशपलमाद् तेनेति । अतएव वद्वयभाववद्वचित्वादित्यमितिव्यभिचारशानसद्भ्येषपि धूमहेतुमती पर्वतो वद्वयमान इत्यनुभितिर्न दृश्यते । अथ च साप्याभावाद्यनश्याहित्या व्यभिचारशानस्य नानुभितिप्रतिबन्धकतेति स्पष्टम् ।

• सरलवर्णी •

जापगा, क्योंकि यहाँ पर हात को सम्बन्धता न मानी जायगी । यहाँ ही व्यवहार के बड़ से मान ली जाती है । यहाँ ही वाचित् ऐसा व्यवहार नहीं होता ।

अनुभितिविरोधित्वं है अनुभिति व उस के करण किसी एक का विरोधित्व । इससे व्यभिचारी में अतिव्याप्ति नहीं हुई । दोषशान भी जिस हेतु को छेकर होता है उस हेतु से साप्य अनुभिति का ही प्रतिबन्धक होता । अतः एक हेतु में व्यभिचारशान होने पर दूसरे हेतु से अनुभिति हो जाती है, साप्याभावादि का अवशाद्यन न करने से साक्षात् अनुभितिविरोध न करते हुये भी इस की प्रति- सन्धकता भव जायगी । निष्कर्षः—जैसे साप्यपद्वेतु में वित्तने दोष सम्मय हो

के न्यायसिद्धान्तमुक्ताखण्डो के

यादशसाक्षप्रमुखेतौ यावन्तो दोषास्तावदन्यान्यत्वं तत्र हेत्वाभास-
त्वम् । पञ्चत्वकथनन्तु तत्सम्भवस्थलाभिप्राप्येण ।

एव च साधारणाद्यन्यत्वमनेकान्तिकत्वम् । साधारणः साध्यवदन्य-
शृतिः, तेन च व्याप्तिशानप्रतिक्रियः क्रियते । असाधारणः साध्यासमा-
नाधिकरणो हेतुः, तेन साध्यसामानाधिकरण्यप्रदः प्रतिक्रियते । यथा

* प्रभा *

ननु निर्वद्धिः पर्वतो वहिमान् इत्यत्र वहुयभावरत्वर्वतो वहिमान् इत्यनु-
भितेष्टिद्वया अनुभितिविद्यतेष्टाभासु उच्चासात्मन्यात् न मवेद् हेत्वाभासत्त
व्यवहार इति चेदगाह यादशेति । अयमाश्रयः, ईद्युस्त्वले यावन्तो दोषाः सम्भ
वन्ति तावदन्यात्याक्षमेव हेत्वाभासत्वमिति । तथा चाप्र वहिविधिष्ठपर्वदरूपाभषा-
स्तिदेः धूमाभावविधिएनिर्वहिरुपस्त्रूपासिद्वेष सत्वेन तथोहेत्वाभासता अभो-
धत इति ।

नचैषम् एव हेत्वाभासा इति कपने क्य चरितार्थमिति चाच्यम्, वासुगंधवान्
स्नेहाद् इत्यादिषु यजु श्वेतपि हेत्वाभासाः सम्भवन्ति तत्प्रलभिष्ठेण तदुच्छितिनि
सदृशगाह पञ्चत्वकथनन्तु इति ।

कर्णित्वरैतैव अनेकान्तिकत्वं लक्ष्यति एव चेति । आदिवदेनात्पाराणगुप्त
सहारिणोप्रहः । साधारणस्य कार्यमाद तेनेति । असाधारणस्य कार्यमाद वेनेति ।
असाधारणस्य भूमाद् यथेति ।

* सरस्वती *

तदृष्टिसमिक्षात् ही ऐत्वाभासत्व है । एव हेत्वाभास देवे हैं ये कपन तो
सम्भवस्थलों के अभियाप्त से है ।

साधारणादि अन्यतम को अनेकान्तिक कहते हैं । साध्यगान् से भिन्न में हृषि
साधारण होता है, उससे व्याप्तिशान का प्रतिक्रिय होता है । राष्ट्रका असमाना-
धिकरण जो हेतु उसे असाधारण कहते हैं, उससे साध्यसामानाधिकरण ढान को
रोका जाता है । शब्द पश्च, नित्यत्वसाध्य तथा शब्दत्वहेतुस्थल में असाधारण

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॐ

शब्दो नित्यं शब्दत्वादित्यादावसाधारण्य, शब्दोऽनित्यं शब्दत्वा दित्यादी त्वसाधारण्यभ्रम ।

अन्ये तु सप्तशब्दचिरसाधरण । सप्तशब्द निष्ठितसाध्यवान् । इत्यत्र शब्दोऽनित्यं शब्दत्वादित्यादी यदा पक्षे साध्यनिष्ठयस्तदा नासाधारण्यम् तत्र हेतोनिष्ठयादिति बदन्ति ।

अनुपस्थितारी चात्यन्ताभावप्रतियोगिसाध्यकादि, अनेन व्यतिरेक व्याप्तिशानप्रतिकन्थं वियते ।

विश्वस्तु साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगी, अय साध्याभावप्रहसा
* प्रमा *

अनु निष्ठितसाध्यवान् सप्त, सफलसप्तद्व्यापृच्छासाधारणो भवति, उत्ते पक्षे साध्यनिष्ठयस्ते हेतोनिष्ठय त् नासाधारण्यम्, यदानीम् वष्टस्यैव यज्ञकालेन निष्ठितसाध्यव्यापृत्त्वाभावात् । यदा च पक्षे साध्यहरेहत्तदा समावति असा धारण्यमिति अनित्यदेवतामस्य व्यवस्थापक्षति शाचीता । तमाह अन्ये तु इति । तृतीयमनुपस्थितारिण निर्यकि अनुपर्याति । परमाह अनेनेति । साध्याभाव ध्यापकीभूताभावप्रतियोगिवक्तव्यविरोधान्यादिव्य इत्यर्थं । वैदलान्वयि साध्यके च अव्यवस्थाप्रतिशानादेवानुभिति ।

विश्व लक्षणति साध्येति । परमाह अयमिति । साध्याभावसामग्री लेन साध्याभावसमुत्ताहकत्वा प्रतिव्यक्ता । विश्वस्तप्रतिष्ठयोर्मेद व्यवस्था

* सरकती *

तथा शब्दपक्ष, अविवल्पसाध्य, शब्दव्येतुरूपल मे असाधारण भ्रम होता है ।

जोड़े कहते हैं कि सप्त में अनुचित असाधारण होता है । साध्य का निष्ठय जिसमें हो उसे सप्तक पक्षते हैं । अत शब्देऽनित्य इस स्थल में पक्ष में साध्य का निष्ठय रहने पर असाधारण नहीं, क्योंकि पक्ष में हेतु का निष्ठय ही है । अत्यन्ताभाव के अप्रतियोगी साध्य आदि जहाँ मिलें वहाँ अनुपस्थितारी होता है, इससे व्यतिरेकव्याप्तिशान आ प्रतिवक्तव्य होता है ।

साध्यव्यापकीभूत अभाव के प्रतियोगी को विश्व कहते हैं । यह एव्याप्त

के न्यायसिद्धान्तमुकावली के

मन्त्रीत्वेन प्रतिपक्षे प्रतिहेतुः साध्याभावसाधकः, अत्र
तु हेतुरेवेति विशेषः । साध्याभावसाधक एव साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्तु
इत्यशक्तिविशेषोपस्थापकत्वाद्य विशेषः ।

सत्रतिपक्षः साध्याभावब्याप्यवस्थकः । अगृहीताप्रामाण्यकसाध्य-
व्याप्यवद्वोपस्थितिकालीनगृहीताप्रामाण्यकत्वद्भावब्याप्यवद्वोपस्थिति -
चिपयत्तयेत्यन्ये ।

अथ च परतपराभावव्यवस्थानात्परतपरानुभितिप्रतिबन्धः फलम् ।

अत्र केवित्—यथा घटाभावब्याप्यवस्थानेऽपि घट वसुःसंयोगे

* प्रभा * ३१६०

प्रयत्नाद सत्रतिपक्षे हति । अध्यमारपः, साध्याभावसाधक देवत्वरं वस्य स
सत्रतिपक्षः, विद्वे तु एक एव स एव हेतुः साध्यसाध्याभिनयोः समुत्साहक
हति भूयात् भेदः । अधिक दिनकर्त्तव्यम् ।

सत्रतिपक्ष निरूपयति साध्याभावेति । सत्रतिपक्षवद्वारीप्रयिकमन्यभिमतं
दशगमाद् अगृहीतेति । सत्रतिपक्षस्य दूपकृतावीज ननु अनुभितिप्रतिबन्धकत्वम्, तद-
भावन्याप्यवस्थानान्तरानुभितिप्रतिबन्धकत्वे प्रगाणविरहादति रक्षणोऽप्यात्मतं हर-
यन्त्रमुपन्यस्ति अत्र केविदिति ।

* सरस्वती *

गान की सामग्री के रूप से विशेषी होता है । सत्रतिपक्ष में तो दूसरा हेतु
साध्याभाव का उद्देश्यात्मक होता है, इसमें तो प्रहृत हेतु ही, इतना भेद है ।

साध्याभावस्थाप्यवद्वोपस्थितिपक्ष कहते हैं । किमी का मत है कि
नहीं दखोते हैं अप्रामाण्य गिरफ्तार ऐसे साध्याभावस्थाप्यवद्वोपस्थितिपक्ष एवेत्य-
प्रामाण्यक तदभावव्यवस्थानात्परतपरानुभितिप्रतिबन्धकत्वात् है ।

इसमें परापर अप्रामाण्यवस्थान दे परापर नुभिति का प्रविक्षय होता
है । यहाँ पर किसी का मत है कि—जैसे घटाभावस्थाप्यवस्थान देने वाले भी

४३ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४३

सति घटवत्त्वज्ञानं जायते, पथा च रथे सत्यपि पीतत्वाभावव्याप्त्यशहृ-
स्ववत्त्वज्ञाने सति पिचादिदोषे पीतः शहृ इति धोर्जायते, एवं कोटिद्वय-
व्याप्तदर्शनेऽपि कोटिद्वयरय प्रत्यक्षरूपः संशयो मवति, तथा सत्प्रतिपक्ष-
रथेण संशयरूपानुमितिर्भवत्येव । यत्र चैककोटिद्वयाप्तदर्शनं दग्धाधिक-
बलतया द्वितीयकोटिभानप्रतिवन्धान्न संशयः । फलवलेन धार्यिक-
मावः फलव्यत इति बदन्ति ।

तत्र, तदभावव्याप्तवत्त्वज्ञाने सति तदुपनीतभानविदेषशाव्यवोधादेर-

* प्रमा *

भवत्येवेति । अनुमितिम् प्रति तदभावव्याप्तवत्त्वज्ञानस्य प्रतिक्षेपत्वे प्रमाणविर-
हात् अवश्यकलृहस्तभावसामग्रीभिरेव तत्तदभावकोटिकुशशयानुमिती सम्पत्ता-
याम् सशयानुमितिम् प्रति तदभावव्याप्तवत्त्वनिधयत्वेन अतिरिक्तकारणलब्धत्य-
नहपर्योरय च न भवतीति हृदयम् ।

नचैवम् उभयभासकत्वे तदुभयभानमिति कथिते पिचादिदोषसन्त्वेऽपि पीतत्व-
शुक्रत्वोभयस्तुत्ती उभयोभानमापदेतेति शहृपामाह फलवलेनेति । तथाय तत्र
पीतत्वप्रत्यक्षरथे वानुपविकल्पा शुक्रत्वपदेऽपि रिचलपदोपस्य द्रविष्वन्धकलम् प्रकल्प्य
पीतत्वप्रत्यक्षसामग्र्या अविकल्प्यत्वम् । एवम् दूरत्वदेषे सत्यपि प्रयागुत्पुरुष्य-
त्वयोः स्मृतो सशयस्यैव उदयात् उत्त्वामग्राया समवद्वयत्वमेव कल्पयत इति ।

रक्तकोपकारमत्पुरपाच सम्भवति तत्रेति । उपनीतभानम् = शानख्यणा ।

* सरस्वती *

चक्षु के सघोग से घटवत्त्वज्ञान हो जाता है, जैसे पीतत्वाभावव्याप्त्य शास्त्रवत्त्व-
ज्ञान रहने पर भी पित्र आदि दोष से पीतः दर्शकः यह ज्ञान डसन्न होता है, कोटि-
द्वयव्याप्त के दर्शन होने पर भी कोटिद्वय का प्रायस्तरूप सदाय होता है, जैसे
सत्प्रतिपक्षस्तर में सशयरूपा अनुमिति होती ही है ।

जहाँ पर एककोटियाप्तदर्शन होता है पर द्वितीयकोटि के ज्ञान का प्रतिपक्षन्तर
हो जाने से सदाय नहीं होता । फलवल से ही समवद्वयता तथा अग्रिवद्वयता की
कल्पना होती है ऐसा कहते हैं ।

परन्तु यह उचित नहीं, क्योंकि तदभावव्याप्तवत्त्वज्ञान होने पर उसके ज्ञान-

के न्यायसिद्धान्तमुकावली के

नुदयालौकिकसंशिकर्पातन्यदोषविशेषजन्यज्ञानमात्रे तस्य प्रतिबन्धकता, लाघवात्, न तूपनोत्भानविशेषे शावदभोधे च पृथक्भवित्प्रबन्धकता, गौर-चात् । तथा च प्रतिबन्धकघट्वात्कथमनुभिति । न हि लौकिकसंज्ञिकर्प-स्थले प्रत्यक्षमिव सत्यतिपक्षस्थले सशयाकारात्मनुभिति, प्रामाणिकी येनानुभितिभिन्नत्वेनापि विशेषणीयम् । यत्र च कोटिद्वयव्याप्त्यवस्तुज्ञानं ततो-भयग्रामामाण्यज्ञानात्संशयो, नान्यथा, अगृहीताप्रामाण्यकर्त्तव्यैव विरोध-ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादिति ।

असिद्धिस्त्वाभ्यासिद्धित्वाद्यन्यतमत्वम् । आभ्यासिद्धि पक्षे पक्षवा-
प्ति प्रभा *

ज्ञानपात्रे = लोटशज्जानत्यावभिष्ठुते । सत्यतिपक्षस्थले सशयाकारात्मनुभितिने प्रामा-
णिकीति सिद्धातः । नन्वेदम् उभयाप्तवस्त्वनिश्चयात् प्रामाणिक संशयोऽपि क्य-
मिति ? समाधते यत्र चेति । यत्र विरोधिताने अप्रामाण्य न शृणुत तदेव प्रति-
बन्धकम् इति भावः ।

असिद्धि लक्षणति असिद्धिरिति । आदिना स्त्रहणसिद्धिन्याप्तवासिद्धी ।

आभ्यासिद्धि लक्षणति पक्षे इति । पदवाकन्वेदकाभानवान् पथ एव तपेत्यु

* सरलती *

सहज, शास्त्रवैष्ण आदि के न होने से लौकिकसंज्ञिकर्प से अजन्य दोषविशेष से
अभ्यन्य ज्ञानमात्र में लाघवात् उसे प्रतिबन्धक मानते हैं । ज्ञानलक्षण तथा
शास्त्रवैष्ण के लिये पृथक् प्रतिबन्धकना नहीं जाती । तथा च प्रतिबन्धक
'रहने पर भनुभिति' हैसे । लौकिकसंज्ञिकर्प में प्रत्यष्ठ की तरह सत्यतिपक्षस्थल में
सशयाकार भनुभिति प्रामाणिक नहीं, अः अनुभितिभिन्नतेन निवेद भी
नहीं कर सकते ।

जहाँ पर कोटिद्वयव्याप्त्यवस्तुज्ञान हो वहाँ दोनों में अप्रामाण्यज्ञान से संशय
होता है, अप्यग्रा नहीं, क्योंकि जिसमें अप्रामाण्य का ग्रहण कर लिया गया है
ऐसा विरोधितान प्रतिबन्धक हो जायगा ।

आभ्यासिद्धि आदि भेद से असिद्धि करे प्रकार की होती है । पथ में पश्चा-

ॐ न्यायसिद्धान्तगुच्छावली ३

मन्त्रेदकस्याभावः । यत्र च 'काङ्क्षनमयः पर्यंतो बहिमानि'ति साप्त्ये
सत्र 'पर्यंतो न काङ्क्षनमय' इति हाने विद्यमाने काङ्क्षनमयपर्यंते परामर्शं
प्रतिबन्धः फलम् ।

स्वरूपासिद्धिस्तु पक्षे व्याप्त्यत्वामिमतस्याभावः । तत्र च हदो द्रव्यं
धूमादित्यादी पक्षे व्याप्त्यत्वामिमतस्य हेतोरभावे हाते पक्षे साध्यव्या-
प्यहेतुमत्वानरूपत्वं परामर्शस्य प्रतिबन्धः फलम् ।

साध्याप्रसिद्धथादयस्तु व्याप्त्यत्वासिद्धिमध्येऽन्तर्भूताः । साध्ये साध्य-
तावच्छेदकस्याभावः साध्याप्रसिद्धिः । एतज्ञाने जाते 'काङ्क्षनमयवदहि-
• प्रभा •

दाहरति यत्र चेति । अन पश्चातावच्छेदकम् काङ्क्षनमयत्वम् पर्यंतत्वं च । काङ्क्षन-
मयत्वाभावः पर्यंते स्पष्ट एव । कलमाह तु त्रैति ।

स्वरूपासिद्धि लक्षणति स्वरूपासिद्धिरिति । उदाहरति त्रैति । व्याप्त्यो नाम
व्याप्त्याभ्यः हेतु, पृष्ठे धूमः व्याप्त्येनामिमतः । कलमाह पक्ष द्वौत । पक्षे
हेतोरभावः स्वरूपासिद्धिरिति संक्षेपातः ।

साध्याप्रसिद्धिसाधनाप्रसिद्धि व्याप्त्यत्वासिद्धावन्तमविविति साध्येति । तत्र
साध्याप्रसिद्धि प्रसङ्गात् लक्षणति साध्य इति । साध्यतावच्छेदकाभावतात् साध्यः
तथा । उदाहरणमाह काङ्क्षनेति । साध्यः काङ्क्षनमयवदहिः, साध्यतावच्छेदकं काङ्क्ष-

• संरक्षणी •

वच्छेदक का अभाव ही आप्रसिद्धि है । कहाँ पर 'काङ्क्षनमयपर्यंत बहिवालः'
वह सिद्ध करते हैं वही पर 'पर्यंत काङ्क्षनमय नहीं' ऐसे हात के रखने पर काङ्क्षन-
मयपर्यंत में परामर्श का प्रतिबन्ध ही इसका फल होता है ।

व्याप्त्यत्वेन अमिमत का पक्ष में अभाव ही स्वरूपासिद्धि है, हदो द्रव्यं धूमात्
इत्यादिस्तल में पक्ष में व्याप्त्यत्वामिमतैरेतु का अभाव जात होने पर साध्यव्या-
प्यहेतुमत्वानरूप परामर्श का प्रतिबन्ध ही पल होता है ।

साध्याप्रसिद्धि आदि का व्याप्त्यत्वासिद्धि में अन्तर्भूत ही जाता है । साध्य
में साध्यतावच्छेदक का अभाव ही साध्याप्रसिद्धि है । इससे 'काङ्क्षनमय-

* न्यायसिद्धान्तमुकावली *

मानित्यादौ साप्यतावच्छेदकविशिष्टसाप्यव्यवस्थज्ञानहृपपरामर्शं प्रतिबन्धः फलम् ।

एवं हेतु देतुतावच्छेदकस्याभावः साधनाप्रसिद्धिः, यथा काङ्गनमय-धूमादित्यादौ । अत्र देतुतावच्छेदकविशिष्टहेतोर्ज्ञानाभावाच्छेदकव्याप्तिः शानादेरभावफलम् ।

एव वहिमान् नीलधूमादित्यादौ गुहवया नीलधूमत्वत्य देतुतावच्छेदकत्वमपि व्याप्यत्यासिद्धिरित्यपि वदन्ति ।

* प्रभा *

नमपत्रम्, वहित्वं च । तत्र वही साच्ये साप्यतावच्छेदकस्य काङ्गनमयत्वस्याभावः स्पष्टः ।

साधनाप्रसिद्धि लक्षयति एवमिति । उदाहरति यत्येति । देतुः साधनम् काङ्गनमयधूमः, देतुतावच्छेदक काङ्गनमयत्वं धूमाव चेति धूमे काङ्गनमयत्याभावः स्पष्टः, पञ्चमार्द अप्रेति । गुहवर्मस्यानवच्छेदकविशिष्टान्तेन व्यर्थविशेषण-वर्णिते नीलधूमहेतु देतुतावच्छेदक नीलधूमत्वमपि व्याप्यत्यासिद्धेवशाश्रणम् ।

वेषा चिन्मतगुप्तरथापयति एवमिति । नीलधूमे व्याप्तिस्त्वाद् व्याप्त्यला-सिद्धिने भवतीति वदन्तीत्युक्त्वा स्वमत रप्तयति विश्वनाथः । अधिकन्तु दिनकृपाम् ।

* सरवती *

वहिमान् इत्यादि में साप्यतावच्छेदकविशिष्टसाप्यव्यवस्थज्ञानरूप परामर्श का प्रतिक्रिय होता है ।

इसी प्रकार देतु में देतुतावच्छेदक का अभाव ही साधनाप्रसिद्धि है । इस से 'काङ्गनमयधूमात्' इत्यादित्यल में देतुतावच्छेदकविशिष्टदेतुताव का अभाव होने से तदेतुतावस्थासिद्धान्तादि का अभाव हो जाता है ।

ऐसेहो 'वहिमान् नीलधूमात्' इत्यादि स्थल में गुहर्षम् होने के बारम नीड़-धूमल देतुतावच्छेदक न बन सकेगा, ऐसी हिति में व्याप्यत्यासिद्धि होगी ऐसा कहते हैं ।

क्षे न्यायसिद्धान्तमुक्तावली क्षे

वाधस्तु पक्षे साध्यामावादिः । एतस्याग्रुभितिप्रतिबन्धः फलम् । तद्वर्मिकतदभावनिश्चयो लौकिकसज्जिकर्णजन्यदोषविशेषाजन्यतद्वर्मिक-
सञ्ज्ञाननामात्रे विरोधीति ।

त तु चत्र सशयसाधारणं पक्षे साध्यस्तद्विवाचनमनुभितिकारणं
तद्विरोधितया च वाप्सत्प्रतिपक्षयोर्हेत्वामासत्यभिति युक्तम्, अप्रसिद्ध-
साध्यकानुभित्यनापच्चे, साध्यसशयादिकं विनाप्यनुभित्यत्पत्तेश्च ।

* प्रभा *

वाप्स लक्ष्यति वाप्सस्त्वति । अदिवदेन साध्यरदन्यतदस्य पश्चात्तुसिद्धाप्यादेष्य
ग्रहणम् । कर्माद एतस्येति । प्रतिबन्धप्रतिबन्धकभावस्थल्यमाद तद्वर्मिकेति ।
तद्वर्मिकतदभावनिश्चयः—अवादार्पणामाप्यहानास्तकन्दित-तद्वर्मिकतदभावनिश्चयः ।
वाप्सुद्देवत्तद्वर्मिकेति । लौकिकसज्जिकर्णजन्यविशेषजुहितग्रन्थस्तिवेत्यता अदा
लौकिकसज्जिकर्णनन्येति । इहो न पीत इत्यादिनिष्ठयेऽपि विचादिवशास्
शास्त्रीत इति भानोदयात् वाप्स दोषविशेषेति । कस्यचिन्मत दूषयति न लिखिति ।
पक्षे साध्यस्तसर्गान्तमनुभितिजनकम्, तद्विरोधित्वेन च वाप्सप्रतिरक्षयोः
हेत्वामासतेति तदाशयः । स्तुप्रसिद्धमाद अप्रसिद्धेति । विशेषजुहितम् प्रति
विशेषणशानस्य कारणतया अप्रसिद्धमाध्यकरणे विशेषणस्य साध्यस्य अशानादिति
भावः । नचेदथी अनुभितिरेवामसिद्धेति कथम्देष्य इति वाच्यम्, साध्यसशयादिक
विनापि घनगर्जितेन भेषानुभिते, प्राभागिकत्वात् ।

पक्षविशेषजुहितसाध्यामावशाने प्रमात्रविश्वयः अनुभितिप्रतिबन्धकस्तदभावव्य

* सरस्वती *

यह में साध्यामात आदि ही वाप्स है । अनुभिति का प्रतिबन्ध ही इसका
पक्ष है । तद्वर्मिकतदभावनिश्चय लौकिकसज्जिकर्ण से अजन्य दोषविशेष से अजन्य
तद्वर्मिक तज्ज्ञानमात्र में विरोधी होता है । यह में साध्यस्तद्विवाच शान ही अनुभिति
का कारण है, तद्विरोधी होने के कारण वाप्स तथा सत्प्रतिवेष को हेत्वामास कहा
जाता है । यह टीक नहीं, क्योंकि अप्रसिद्धमाध्यक अनुभिति न बनेगी,
सायही सशय आदि के विना भी अनुभिति को उत्पत्ति होने लगेगी । साध्यामाव-

क्षे न्यायसिद्धान्तमुच्चायली क्षे

एवं साध्याभावज्ञाने प्रमात्वज्ञानमपि न प्रतिबन्धकम्, मानाभावाद्वीर्याय । अन्यथा सल्लिपिष्ठाद्वावपि तद्भावव्याप्त्यवत्यज्ञाने प्रमात्वाधिपय-कर्त्त्वेन प्रतिबन्धकतापत्तेः । किन्तु भ्रमत्वज्ञानाजामकन्दितशाधादिवुद्देश्यविक्षयकर्त्ता । तत्र भ्रमत्वज्ञाद्वाविष्टनेन आपाण्यज्ञानं क्षिदुपयुज्यते ।

न च वाघस्थले पक्षे हेतुसन्त्वे व्यभिचारः, पक्षे हेत्वभावे रवहृषा-सिद्धिरेव दोष इति याच्यम्, यापज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानादेभेदात् ।

* प्रधा *

कारणमिति वादशप्रमात्वमेव वाक्यो नान्यादश इति ग्राहीनश्च दूषयति एवमिति । प्रमात्वज्ञानम् = प्रमात्वनश्चयः । मानाभावात् = ताद्वासामस्य विरोधिते प्रमाणविरहात् । गौरवादिति । सशर्यनश्चयसावारणः आपाण्यज्ञानामाय एव प्रतिबन्धकदले निवेशयो न त्रु पक्षविशेष्यक्षसाच्यज्ञावनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता, एषगौरवादिति भावः । अःयथा = ईदशगौरवगुरीकृत्य । सत्प्रतिपादी इत्यादिना विरुद्धादिसंग्रहः । प्रतिबन्धकतापत्तेः = तुल्ययुक्त्या तथा वर्तु शब्दय वादित्यायः । उद्धान्तमाद किन्तिवति । तथाच अनुमितिदत्तरणज्ञानाप्यतरम्, प्रति शासात् प्रतिबन्धकीभूतज्ञानविद्यत्वाभावात्, न साध्याभावज्ञानप्रदाय ऐपामात् इति निष्पर्णः । व्यभिचारादिपु न वापाक्तमाय इति शुद्धते न चेति । उत्तरवति याघेति । शानादेतित्यादिना असिद्धिज्ञानपरिग्रहः । तथा न वाघस्थले व्यभिचारादित्यादिना असिद्धिज्ञानपरिग्रहः ।

* सरस्वती *

ज्ञान में प्रमात्वज्ञान भी प्रतिबन्धक नहीं, क्योंकि नहीं कोई प्रमाण ही है, न कायप ही, प्रकृत गौत्र भी होगा ।

ऐसा न माना जाय तो सत्प्रतिपक्ष व्यादि में भी तद्प्राणव्याप्त्यवत्यज्ञान में प्रमात्वविषयकर्त्त्वेन प्रतिबन्धकता ही जापयो । होता ऐसा नहीं, किन्तु भ्रमत्वज्ञान से अलास्कन्दित व्याघरशान ही प्रतिबन्धक होता है । भ्रमत्व का सम्बद्ध दूर करने के लिये प्रामाण्य का ज्ञान काढ़ी पर उपयुक्त होता है ।

प्रथा— वाघस्थल में विदि पक्ष में हेतु रह जाय तो व्यभिचार, पक्ष में हेतु न रहे हो व्याघरशानिद्वि ही दोष हो जाया, क्या आपद्यकर्ता जाप की ।

उक्तर—व्याघरशान व्यभिचारादित्यादिन से भिज सिद्धनित है । इतना ही

३ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ४४

किञ्च यत्र परामर्शानन्दव वाघदुद्विस्तत्र व्यभिचारक्षानादेरकिञ्चित्कृत्याद्वाधस्यानुमितिप्रतिबन्धकस्वं वाच्यम् । एव यद्वोत्पत्तिक्षणाथच्छुम्भे घटादी गन्धव्याप्यपुरुषिक्षीत्ववत्वज्ञान तत्र वाघस्यैव प्रतिबन्धवस्त्वं वाच्यम् ।

न च पक्षे घटे गन्धसत्त्वात्कथं वाघ इति वाच्यम्, पक्षवाषच्छेदकं वेशकालाचच्छेदेनागुमितेरनुभवसिद्धत्वादिति ।

वाघदुद्वयाप्यभिन्ना ये हेत्वाभासासात्तद्वयाप्या अपि तन्मध्य एवान्तर्भवन्ति । अन्यथा हेत्वाभासाधिक्षयप्रसङ्गोत् । वाघव्याप्यसत्प्रतिपक्षः

* प्रभा *

चाराहिंदक्षयतरनियमेऽपि वाघशानस्य व्यभिचारादिविषयकस्वाभावेन वाघस्य हेत्वाभासान्तरता निराशावा । यत्र व्यभिचाराद्यो न सम्भवन्ति तद्वयमपि वाघस्यल्ल खतन्वयमाद एवमिति । तद्वच्छणे द्रव्य निर्गुण निर्भिक्षय चेति सिद्धान्तात् ।

पन्न हेत्वाभासा इति सख्याम् सिधीक्षुभाद वाघदुद्वयाप्येति । नचेवम् वाघव्याप्यतया सत्प्रतिपक्षेऽपि न स्यात् भिज्ञ इति वाच्यम्, स्वतन्त्रेच्छुस्य मुनेः गीतमस्य नियोगार्थ्यनुयोगानहरय सूत्रे सत्प्रतिचारविशद्वप्तकरणसमाव्यसमकाळः शीता इति-न्यायदर्शनीये स्पष्टम् सत्प्रतिपक्षय पार्थक्षयेनोपदेशात् । साध्याभावव्या-

• सतत्वती •

नहीं, जहाँ पर परामर्श के अनन्तर वाघशान हो, यहाँ पर व्यभिचारक्षानादि कुछ नहीं कर सकते । अतः वाघ को ही वहाँ पर अनुमितिप्रतिबन्धक मानना होगा । और भी उत्पत्तिक्षणाथच्छुम्भे घट में जहाँ गन्धव्याप्यपुरुषिक्षीत्ववस्वं का ज्ञान हो रहा हो वहाँ वाघशान को ही प्रतिबन्धकता माननी परेगी ।

प्रभ—द्रव्यतत्पक्ष में घट में गन्ध रहता हो दै, वाघ कैसे ।

उत्तर—पक्षता के अवच्छेदक यो देश तथा काल तद्वयम्भेदेन (उपमे) अनुमिति अनुभवसिद्ध है । अतः उत्पत्तिक्षण में गन्धाभाव को लेकर वाघ वन जायगा ।

वाघ तथा उपमे के व्याप्त से भिन्न यो व्याय देशाभासु उपमे के व्याय भी उन्हीं में अनन्तर्भूत हो जायेंगे । अन्यथा हेत्वाभासो की सख्या वह जायगी । वाघव्याप्य

के कारिकावली के
आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः ।
तथेवानुपसंहारी त्रिपाञ्जेकाग्निरक्षे मवेद् ॥ ७२ ॥
यः सपष्ठे विषष्ठे च मवेत्साधारणस्तु सः ।

के न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के
मित्र पव, स्वप्नेच्छेन मुनिना शृघ्नुपदेशात् । सत्त्वविषष्ठ्याप्यत्तु न
प्रतिबन्धक इति प्रधटुकाये ॥ ७१ ॥

य सपष्ठ इति । सपश्चविष्ठ्यर्त्ति साधारण इत्यर्थ । सपश्च =
निश्चितसाध्यवान् । विष्ठ्य = साध्यवद्वित्र । विरद्धवारणाय सपश्चवृत्ति-
त्वमुत्तम् ।

वस्तुतो विषष्ठवृत्तित्वमेव वाच्यम्, विरद्धय साधारणत्वेऽपि दूषक

• प्रभा •

प्रयोग्यवत्त्वग्नात्प साध्यवत्त्वज्ञनविरोधित्वे मनामावादाह न प्रतिबन्धक इति ।
कारिकावलीपक्षे साधारणमाह य इति । विषष्ठवृत्तित्वमेव यदि साधारणश्च
स्याददा विरद्धेऽपि वार्तिरत आह सपश्चवृत्तित्वमिति । इत्यपरत्या तथापि हानिने-
पिया वस्तुत इति । विषष्ठवृत्तित्वमेव लक्षणमत्तु, विरद्धे यद्युत्र नाम का हानि ।

• सरस्ती •

दोने पर भी सत्त्वतिष्ठ पिल ही रहेगा, उसका अन्तर्भाव नहीं करना । क्योंकि
सत्त्व पैच्छ महामुनिगौडम ने अपने न्यायदर्शन 'सत्त्वभिचार-विरद्ध-प्रकाश-
सम-साध्यसमक्षातीता हेत्यामासा' इस सूत्र में स्पष्ट ही उसे पृष्ठक माना है ।
सत्त्वतिष्ठ का व्याप्त प्रतिबन्धक ही नहीं होता, अत उसको कोई चिन्ता नहीं ।
कारिकावली के क्रमानुसार अब हेत्यामासो को गतिरीढ़ि का प्रश्नान कर रहे
हैं— साधारण इत्यादि । जो सपष्ठ तथा विषष्ठ दोनों ही में रहे उसे साधारण
हहते हैं । जिसमें साध्य का निश्चय हो जुआ ही उसे सपष्ठ हहते हैं । साध्यान्
से भिन्न को विषष्ठ हहते हैं । विरद्ध में लक्षण की अतिरिक्ति न हो जाय
इसुद्धिये सपश्चवृत्तिव मी बहा ।

वस्तुत विषष्ठवृत्तिवमात्र ही लक्षण करना चाहिए । विरद्ध में लक्षण चढ़ा

❀ कारिकावली ❀

आथयासिद्धिराया स्पातस्वरूपासिद्धिरप्यथ ।

व्याप्त्यत्वासिद्धिरपरा स्पादसिद्धिरवस्थिषा ॥७५॥

पश्चासिद्धिर्यत्र पक्षो मवेन्मणिमयो गिरिः ।

इदो द्रव्यं धूमवत्त्वादशासिद्धिरथापरा ॥७६॥

व्याप्त्यत्वासिद्धिरपरा नीलधूमादिके मवेत् ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

असिद्धि विभजते—आथयासिद्धिरित्यादि ॥ ७५ ॥

पश्चासिद्धिरिति । आथयासिद्धिरित्यर्थः । अपरेति । स्वरूपासिद्धि-
रित्यर्थः ॥ ७६ ॥

नीलधूमादिक इति । नीलधूमवत्त्वादिकं गुहतया न हेतुतावच्छेदकं स्वसमानः

* प्रथा *

प्रथाः । असिद्धि विभजते आथयेति । वायाम् आभयासिद्धिम् पश्चासिद्धिनाम्नी
मुदाहरति भविमय इति । स्वरूपासिद्धिमुदाहरति द्वय इति ।

तृतीया व्याप्त्यत्वासिद्धिमुदाहरति नीलधूमादीति । तत्र 'सम्बवति क्षी घमे
गुप्ते तदमावत्' इत्यवच्छेदकतावादसिद्धान्तेन नीलधूमत्वापेतया धूमत्वस्य धूपोर-
वच्छेदकविभिर्विश्वायति गुहतयेति । व्यर्थिदीरणपटितेतुस्थले व्याप्ताव-
च्छेदकः क इति निर्वति स्वसमेति । पर्वतो वडिमान् नीलधूमादितिरथले प्रकृतः
साध्यो धृष्टः, वाय व्याप्तः धूमः, व्याप्तता पूर्णिष्ठा, व्याप्ततावच्छेदक धूमत्वम्,
भृतः स्वयम् नीलधूमत्वम् तासमानाधिकरणं प्रकृतसाध्यव्याप्ततावच्छेदक धूमान्तरम्
धूमत्वम्, तद्यटितलं नीलधूमत्वम्, इति न नीलधूमत्वं व्याप्ततावच्छेदकमिति ।

* सरस्वती *

सिद्धि तीन प्रकार की १ आथयासिद्धि २ स्वरूपासिद्धि ३ व्याप्त्यत्वासिद्धि ।
आथयासिद्धि को ही पश्चासिद्धि मी पक्षते हैं । उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं ।

नीलधूमादिशब्द में व्याप्त्यत्वासिद्धि होती है । गुहधर्म होने से नीलधूमत्व

कारिकावली ॥

विरुद्धयोः परामर्शे हेत्योः सत्प्रतिष्ठिता ॥७७॥

न्यायसिद्धान्तमुक्तावलो ॥

नाधिकरण्याप्यतावच्छेदकथमन्तराघटितस्यैव व्याप्यतावच्छेदकत्वात् ।
भूमप्रागभावत्यसप्रहाय स्वसमानाधिकरणेति ।

विरुद्धयोरिति । कपिसयोगतदभावव्याप्यवस्त्वपरामर्शेऽपि न सत्प्रतिष्ठितस्वमत चक्षविरुद्धयोरिति । तथाघ स्वसाध्यविरुद्धसाध्याभाव-
व्याप्यवस्त्वपरामर्शकालोनसाध्यव्याप्यवस्त्वपरामर्शविषय इत्यर्थ ॥७८॥

* प्रमा *

स्वस्य स्वाविषयकप्रतीतिविषयस्त्रुपरायाप्रितस्याभावाद् धर्मान्तरेति । नच नीड-
भूमत्वर्यापि तदशर्मा तराधितत्वमस्त्येव धूमयत्वं नीढभूमत्वमिलत्वमावादिति
वाच्यम्, स्वाविषयकप्रतीतिविषयस्त्रुपरायाप्रितस्याभावाद्विद्वान्निष्पक्षकारत्वानिस्त
प्रितावर्ष्णेदक्षताप्याप्यनार्थकरणत्वपर्यवस्त्रित्य
तदर्थत्वात् । शुद्धधूमत्वपरायाप्रितस्याभावाद्विद्वान्निष्पक्षकारत्वानिस्त
वर्ष्णेदक्षताप्याप्यनार्थकरणत्वपर्यवस्त्रित्य
तदर्थत्वात् ।

सत्प्रतिष्ठा निरूपयति विरुद्धयोरिति । स्वसाध्येति । स्व सत्प्रतिष्ठात्वेना-
मिमतो हेतु, तसाध्यविद्वदो य साध्याभाव इत्यर्थ ।

* सरस्वती *

आदि ऐतावच्छेदक नहीं क्योंकि स्वसमानाधिकरण ****इत्यादि निष्पातुकृत
ही व्याप्ततावच्छेदक यन वाता है । धूमप्रागभावय वे समृद्ध के छिये
स्वसमानाधिकरण कहा ।

दो विद्वदपरामर्शों से सत्प्रतिष्ठा होता है । कविरुद्गेग, दर्किरुद्गेगामाव-
व्याप्यवस्त्रित्याप्यन्तर्गते पर सत्प्रतिष्ठा नहीं होता, 'क्योंकि विद्वद परामर्शं को
भोग्या होती है । अत स्वसाध्य मेरे विद्वद शास्याभावव्याप्यवस्त्रित्याप्यन्तर्गतिक
लो साध्याप्यदर्श का परामर्श वही सप्राप्तिक्षण का स्पष्ट होता है ।

न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ।

❀ कारिकावली ❀

साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ वाध उदाहृतः ।

उत्पचिकालीनपटे गन्धादिर्यत्र साध्यते ॥७८॥

साध्यशून्य इति । पक्ष = पक्षताथच्छेदकविशिष्ट इत्यर्थ ।
गन्धसत्त्वेऽपि न क्षति । एव मूलावच्छिन्नो वृक्ष कपिसयोगी
योध्यम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीविश्वनाथपद्माननभद्राचार्यविरचिताया
सिद्धान्तमुक्तावल्यामनुमानस्तद्विषयम् ।

————— ❀ —————

* प्रभा *

बाप वक्ष्यति साध्यशून्य इति । सर्वत्र घटे वाध इंदृशो न साम्बद्धि
पात्रवच्छेदकतामाह उत्पचिकालीनेति । उत्पत्तिक्षणे द्रव्य निर्गुणमिति
उत्पचिकालावच्छिन्ने पटे गाधामाव इत्यर्थ । देशस्यापि अवन्त्रेदकता निवेशेत्तद्विषय
एवमिति । मूले शूष्णे न कपिसयोग किञ्चु शासायामितिरेत्पा मूले कपिसयोगी
गामावायच्छिन्ने कपिसयोगवक्त्वप्रतिपादने वाध स्पष्ट इत्याशय ।

इति श्रीगणनारायणशालिश्चकृत्यचित्त न्यायसिद्धान्तमुक्ता न रूपतु
मानस्तद्विषयम् प्रभामित्यान समाप्तम् ।

* सरस्पती *

साध्य से शून्यपद्धति को वाध कहते हैं । विशिष्ट व्याख्या पहले हो चुकी है ।

इति श्रीगणनारायणशालिश्चकृत्ता अनुमानस्तद्विषयतोर्याका ।

—————

BHAVAN'S LIBRARY, BOMBAY-7

N.B.—This book is issued only for one week till _____.

This book should be returned within a fortnight from
the date last marked below

Date	Date	Date
1-1-71		